• वर्ष ६६ • अंक २ • मूल्य ₹२० जनवरी (द्वितीय) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

हैदराबाद सत्याग्रह के फील्ड मार्शल

लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी

जन्मतिथि : पौषपूर्णिमा २५ जनवरी

मुनि सत्यजित्, गौतम खट्टर ,
मीनाक्षी सिंह ।

मुनि सत्यजित्,
आचार्य कश्यप आर्य, सुभाष नवाल

मुनि सत्यजित्, ओम्मुनि,
डॉ.वेदप्रकाश विद्यार्थी,
आचार्य ओम्प्रकाश।

आचार्य सत्यजित्, गौतम खट्टर ,
कन्हैयालाल आर्य।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६६ **अंक :** ०२

दयानन्दाब्द: १९९

विक्रम संवत् - पौष शुक्ल २०८०

कलि संवत् - ५१२४

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२४

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जनवरी - द्वितीय, २०२४

अनुक्रम

०१. साधु चलते भले	सम्पादकीय	०४
०२. पुरुषार्थ का प्रेरक प्रभु	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	०५
०३. इतिहास ऐसे बनता चला गया	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०९
०४. उपनिषद् वाङ्मय के अनुसार...	आचार्या सुमन	१४
०५. ज्ञान सूक्त-०८	डॉ. धर्मवीर	१६
०६. आओ ! धर्म को धर्म बनाएँ	आ. रामनिवास गुणग्राहक	१९
०७. ईश्वर	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	२२
०८. संस्था समाचार	श्री ज्ञानचन्द	२९
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३१
०९. संस्था की ओर से....		३२
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३३
१०. ग्रन्थ - समीक्षा	डॉ. वेदपाल	३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

साधु चलते भले

लोक में मनुष्य के कार्य एवं व्यवहार को दृष्टिगत कर उसके लिए कुछ शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बहुधा यह शब्द संज्ञा के रूप में रूढ़ होकर कई बार अपने मूल अर्थ को अभिव्यक्त नहीं करते। 'साधु' शब्द भी इसी प्रकार का है।

सामान्यत: बाह्य आवरण-वेशभूषा, दैनन्दिन व्यवहार तथा चिन्तन प्रणाली ये दोनों संयुक्त रूप में ही व्यक्ति के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करते हैं। चिन्तन-सोच की अभिव्यक्ति मनुष्य के व्यवहार से ही होती है। जब व्यक्ति का चिन्तन-कथन एवं व्यवहार भिन्न हो जाता है, तब शनै:-शनै: उसका प्रभाव क्षीण होने लगता है। साथ ही समाज में उसकी भूमिका सन्दिग्ध हो जाती है। भूमिका के सन्दिग्ध-निष्प्रभावी होने से उसके कथन का भी प्रभाव समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत उसके कथन-व्यवहार में सामञ्जस्य होने पर उसका प्रभाव भी पड़ता है।

साधु शब्द से संन्यासी, परोपकारी, सहृदय, सभ्य का बोध होता है। वस्तुत: साधु की पहचान है- 'स्व' को 'पर' के लिए समर्पित करने वाला। समष्टि-समाज के हित के लिए व्यष्टि-व्यक्ति अथवा स्वयं की सत्ता को पूर्णत: समष्टि के लिए समर्पित कर देना। यह दुरूहतम कार्य है। इसीलिए भारतीय परम्परा में उसे सदैव आदर की दृष्टि से देखा गया है। समाज का मार्गदर्शन इसी प्रकार के व्यक्तियों ने किया है, जिन्होंने 'स्व' पर सदैव 'पर' को अधिमान दिया है।

महर्षि दयानन्द इस 'स्व' त्याग परम्परा के प्रतिनिधि रहे हैं। महर्षि ने लोकोपकार के लिए ब्रह्मानन्द को छोड़ अनेक शारीरिक कष्ट, आलोचकों के कटुवचन तथा निरादर की सदैव उपेक्षा की। समाज के सभी वर्गों जैसे - कृषक, विधवा, बेरोजगार के साथ गौआदि पशुओं का हित चिन्तन किया। साथ ही प्राणिमात्र के हित-चिन्तन एवं पर्यावणीय सन्तुलन बनाए रखने का सदैव ध्यान रखा।

महर्षि की इसी साधु परम्परा को निरन्तर आगे बढ़ाने का कार्य स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, महात्मा नारायण स्वामी आदि ने किया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द (जन्मतिथि पौषपूर्णिमा) न केवल बाह्य दृष्टि से साधु थे, अपितु **मनसा वाचा कर्मणा** वह साधुत्व के प्रतिमान थे।

साधु चलते भले- इस उक्ति के अनुसार **वह इस प्रकार के यायावर थे, जो शारीरिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु वैचारिक दृष्टि से भी निरन्तर चलते रहे, आगे बढ़ते रहे।** वैदिक धर्म के प्रचार की दृष्टि से सन् १९०१ से मलाया-सिंगापुर-जावा-सुमात्रा-जोहू-ब्रह्मदेश तथा अफ्रीका आदि की यात्राएँ करते रहे।

वैचारिक प्रसार के लिए महर्षि जन्म शताब्दी के अवसर पर स्थापित- '**श्रीमद्दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय**' लाहौर के आचार्य पद का दायित्व स्वीकार तो किया, किन्तु अपने दिए वचन- 'केवल दस वर्ष आचार्य रहूँगा' के अनुसार दस वर्ष होते ही पद का दायित्व छोड़ दिया। हैदराबाद के निजाम द्वारा आर्यों-हिन्दुओं के अधिकारों का हनन किए जाने के विरोध में हैदराबाद सत्याग्रह के फील्ड मार्शल का दायित्व भी निभाया।

नवाब लौहारू के गुण्डों द्वारा सिर पर कुल्हाड़े का वार किए जाने पर सिर तो फट गया, किन्तु अपने साधुत्व का परित्याग नहीं।

इस प्रकार के लोकोपकारी महापुरुषों के लिए ही कहा गया है कि- '**साधु चलते भले।**' इनके शारीरिक वैचारिक चलते रहने पर ही अधिकाधिक लोकोपकार सम्भव है।

डॉ. वेदपाल

पुरुषार्थ का प्रेरक प्रभु

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी),
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–प्रजापतिः, छन्दः–आर्चीपङ्क्तिः (३०), स्वरः–पञ्चमः]

विषयः– केन सत्यमाचरितुमसत्यं त्यक्तुमाज्ञा दत्तेत्युपदिश्यते॥॥

(जो पूर्वोक्त मन्त्र में सत्याचरण करने और असत्याचरण छोड़ने की आज्ञा दी है, वह किसने दी है; इसका उपदेश प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है।)

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति[१] कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति[२]।
कर्मणे वां[३] वेषाय वाम्[४]॥ –यजु० १.५॥

[अनु०-०, नि०-४, उ०-६, स्व०-६, प्र०-१४ = ३० अक्ष०, क०मं०-२, पा०-४]

पदपाठः– कः। त्वा। युनक्ति। सः। त्वा। युनक्ति।[१] कस्मै। त्वा। युनक्ति। तस्मै। त्वा। युनक्ति॥[२] कर्मणे। वाम्।[३] वेषाय। वाम्[४]॥५॥

[अनु०-१८, नि०-०, उ०-६, स्व०-४, प्र०-२ = ३० अक्ष०, अव०प०-०, ग०प०-०, स०प०-१६]

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
कः	को हि सुखस्वरूपः॥	हे मनुष्य! वह कौन है, जो
त्वा	क्रियानुष्ठातारं मनुष्यं पुरुषार्थे॥	सत्यभाषण आदि व्रतों की पालना करने में लगे हुए तुझ उपासक को पुरुषार्थ में
युनक्ति	नियुक्तं करोति॥	प्रवृत्त करता है ?
सः	परमेश्वरः॥	वह सुखस्वरूप परमेश्वर है, जो
त्वा	विद्यादिशुभगुणानां ग्रहणे विद्यार्थिनं विद्वांसं वा॥	विद्यादि शुभगुणों को ग्रहण करने के लिए तुझे
युनक्ति	योजयति॥ अत्र सर्वत्रान्तर्गतो ण्यर्थः॥	प्रवृत्त करता है।
कस्मै	प्रयोजनाय॥	वह किस प्रयोजन के लिए
त्वा	त्वां सुखमिच्छुकम्॥	सुख की कामना करने वाले तुझ उपासक को

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
युनक्ति	योजयति॥	प्रवृत्त करता है ?
तस्मै	सत्यव्रताचरणाय यज्ञाय॥	वह तेरे सत्याचरण रूप व्रत तथा यज्ञिय व्यवहार की निर्विघ्न संपन्नता के लिए
त्वा	धर्मं प्रचारयितुमुद्योगिनम्॥	तुझ पुरुषार्थी को
युनक्ति	योजयति॥	प्रवृत्त करता है।
कर्मणे	पूर्वोक्ताय यज्ञाय॥	वह पूर्वोक्त सत्याचरण रूप व्रत तथा यज्ञिय व्यवहार करने के लिए
वाम्	कर्त्तृ-कारयितारौ॥	तुम दोनों (स्वयं करने और दूसरों से करवाने वाले) को प्रवृत्त करता है।
वेषाय	सर्वशुभगुणविद्याव्याप्तये॥	समस्त शुभ गुणों और विद्या के विस्तार के लिए
वाम्	अध्येत्रध्यापकौ॥ अयं मन्त्रः। (शत०१।१।१३-२२; १.१.२.१) व्याख्यातः॥ ६॥	तुम दोनों को प्रेरित करता है।

तत्त्वबोध—

१. कः — किम्[१] + सु। प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त[२]। मन्त्र में 'कः' शब्द में श्लेष अलङ्कार है। इसी शब्द में प्रश्न है और इसी में उत्तर है। कः = कौन। कः = सुखस्वरूप परमेश्वर।

२. त्वा— यह 'त्वाम्' के स्थान पर प्रयुक्त शब्द है, जो पादादि में न होने पर सर्वानुदात्त होता है।[३]

३. युनक्ति — युजिर् योगे[४] + लट् प्रथम पुरुष एकवचन। मन्त्र में दोनों स्थानों पर अतिङ् पद से परे होने के कारण सर्वानुदात्त है।[५] मूल पद 'युनक्ति' मध्योदात्त है।[६] परमेश्वर द्वारा किसी को किसी कार्य में जोड़ने का तात्पर्य है गुरु के समान[७] उपासक को उस कार्य के लिए प्रेरित करना। महर्षि इसीलिए इसके अर्थ में 'आदिशति' या 'आज्ञापयति' पदों का प्रयोग करते हैं।

४. कस्मै — किम्[८] + ङे (स्मै[९])। प्रातिपदिक

१. किमः कः॥ –अष्टा० ७.२.१०३॥

२. फिषोन्त उदात्तः॥ –फिट्सूत्र-१.१॥

३. त्वामौ द्वितीयायाः॥ –अष्टा० ६.१.२२॥

४. रुधादिगण उभयपदी।

५. तिङ्ङतिङः॥ –अष्टा० ८.१.२८॥
प्रत्ययः, परश्च, आद्युदात्तश्च॥ –अष्टा० ३.१.१-३॥

६. रुधादिभ्यः श्नम्॥ –अष्टा० ३.१.७८॥

७. स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ –योग० १.२६॥

८. किमः कः॥ –अष्टा० ७.२.१०३॥

९. सर्वनाम्नः स्मै॥ –अष्टा० ७.१.१४॥

स्वर से अन्तोदात्त[१०]। मन्त्र में 'कस्मै' शब्द में भी श्लेष है। इसी शब्द में प्रश्न है और इसी में उत्तर है। कस्मै = किस प्रयोजन के लिए। कस्मै = सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति के लिए। महर्षि ने इसीलिए 'कः' शब्द के पदार्थ में 'सुखस्वरूपः (परमेश्वरः)' ऐसा व्याख्यान किया है।

५. कर्मणे – डुकृञ् करणे[११] +मनिन्[१२], नित्वादाद्युदात्तत्वम्[१३]। यहाँ कर्म से तात्पर्य उसी श्रेष्ठतम यज्ञिय व्यवहार से है, जिसका उपदेश इस वेद के प्रथम मन्त्र में 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे'[१४] पदों द्वारा किया गया है। सत्याचरण इस यज्ञिय-व्यवहार की आत्मा है, अतः इसी में समाहित होने पर भी पाँचवें मन्त्र में उपासक उस सत्याचरण के प्रति अपने विशेष आग्रह, संकल्प की दृढ़ता तथा उसके लिए ही परमेश्वर तथा विद्वान् लोगों से प्रार्थना करता है।[१५]

६. वाम् – यह 'युवाम्' के स्थान पर प्रयुक्त शब्द है, जो पादादि में न होने पर सर्वानुदात्त होता है।[१६]

७. वेषाय – विषॢ व्याप्तौ[१७] + घञ्[१८], ञित्वादाद्युदात्तत्वम्[१९]। यहाँ व्याप्ति से तात्पर्य विस्तार करने से है। यह विस्तार स्वयं कर्म करने तथा दूसरों को कर्म करने के लिए प्रेरित करने से ही संभव है; अतः महर्षि 'वाम्' पद की व्याख्या में 'कर्त्तृ-कारयितारौ – करनेवाले और करवानेवाले' तथा 'अध्येत्र्यध्यापकौ – पढ़नेवाले और पढ़ानेवाले' पदों से इस भाव को स्पष्ट करते हैं।

४. महर्षि दयानन्द का भावार्थ – इस मन्त्र पर महर्षि दयानन्द का भावार्थ अवश्य पठनीय है जो मन्त्र के रहस्य को अति सरल और स्वाभाविक शैली में स्पष्ट करता है। महर्षि लिखते हैं – "इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर से ईश्वर जीवों के लिये उपदेश करता है। जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है? इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ही पुरुषार्थ और अच्छी-अच्छी क्रियाओं के करने की तुम्हारे लिये वेद के द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है। इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है? तो वह उत्तर देवे कि सर्वव्यापक जगदीश्वर। फिर वह पूछे कि वह हमको किस-किस प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है? उसका उत्तर देवे कि सुख और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्य विद्या और धर्म के प्रचार के लिये। मैं और आप दोनों को कौन-कौन काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है? इसका परस्पर उत्तर देवें कि यज्ञ करने के लिये। फिर वह कौन-कौन पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है? इसका उत्तर देवें कि सब विद्याओं की प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये। मनुष्यों

---

१०. 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः' (अष्टा० ६.१.६८) से विभक्ति को उदात्तत्व प्राप्त, 'न गोश्वन्त्सावर्णराडङ्क्रुङ्कृद्भ्यः' (अष्टा० ६.१.१८२) से निषेध होकर प्रातिपदिक स्वर ही उदात्त हुआ।

११. तनादिगण उभयपदी।

१२. सर्वधातुभ्यो मनिन्॥ –उणादि० ४.१४५॥

१३. ञ्नित्यादिर्नित्यम्॥ –अष्टा० ६.१.१९७॥

१४. यजु० १.१॥

१५. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ –यजु०१.५॥

१६. युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ॥ –अष्टा० ६.१.२०॥

१७. जुहोत्यादिगण उभयपदी।

१८. भावे। –अष्टा० ३.३.१६॥

१९. ञ्नित्यादिर्नित्यम्॥ –अष्टा० ६.१.१९७॥

को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़ के उनका प्रचार करना चाहिये। किसी मनुष्य को पुरुषार्थ को छोड़ के आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये॥"[२०]

२०. "अत्र प्रश्नोत्तराभ्यामीश्वरो जीवेभ्य उपदिशति। कश्चित् कंचित्प्रति ब्रूते। को मां सत्यक्रियायां प्रवर्त्तयतीति सोऽस्योत्तरं ब्रूयात्। ईश्वरः पुरुषार्थक्रियाकरणाय त्वामादिशतीति। एवं कश्चिद्विद्यार्थी विद्वांसं प्रति पृच्छेत् को मदात्मन्यन्तर्यामिरूपतया सत्यं प्रकाशयतीति। स उत्तरं दद्यात् सर्वव्यापको जगदीश्वर इति। कस्मै प्रयोजनायेति केनचित् पृच्छ्यते। सुखप्राप्तये परमेश्वरप्राप्तये चेत्युत्तरं ब्रूयात्। पुनः कस्मै प्रयोजनायेति मां नियोजयतीति पृच्छ्यते। सत्यविद्याधर्मप्रचारायेत्युत्तरं ब्रूयात्। आवां किं करणायेश्वर उपदिशति। यज्ञानुष्ठानायेति परस्परमुत्तरं ब्रूयाताम्। पुनः स किमाप्तय आज्ञापयतीति। सर्वविद्यासुखेषु व्याप्तये तत्प्रचारायेत्युत्तरं ब्रूयात्। मनुष्यैर्द्वाभ्यां प्रयोजनाभ्यां प्रवर्त्तितव्यम्। एकमत्यन्तपुरुषार्थशरीरारोग्याभ्यां चक्रवर्त्तिराज्यश्रीप्राप्तिकरणम्। द्वितीयं सर्वा विद्याः सम्यक् पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारीकरणं चेति। नैव केनचिदपि कदाचित्पुरुषार्थं त्यक्त्वाऽलस्ये स्थातव्यमिति॥"

– यजुर्वेदभाष्यम् १.६ पर संस्कृत भावार्थ॥

गुरुकुलों को छात्रवृत्ति

स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती (अधिष्ठाता गुरुकुल गदपुरी, जिला पलवल, हरियाणा) ने अपने वैदिक प्रचार ट्रस्ट के द्वारा परोपकारिणी सभा में एक स्थिर निधि बनाई, जिसका उद्देश्य आर्य समाज की शैक्षणिक संस्थाओं (गुरुकुलों) को आर्थिक सहयोग प्रदान करना है। इस स्थिर निधि से प्राप्त ब्याज से परोपकारिणी सभा प्रतिवर्ष गुरुकुलों को छात्रवृत्ति प्रदान करती है। गत वर्ष कुल १,२२,००० रु. की छात्रवृत्ति दी गई, जिसका विवरण निम्न प्रकार है–

क्र. सं.	संस्था का नाम	
०१.	गुरुकुल महाविद्यालय, पूठ	१०.०००/–
०२.	सर्वानन्द संस्कृत महाविद्यालय साधु आश्रम, अलीगढ़, उ.प्र.	१०.०००/–
०३.	महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल व गोशाला भादस	१०.०००/–
०४.	महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट, टंकारा, गुजरात	१०.०००/–
०५.	श्री विरजानन्द राष्ट्रीय शिक्षण संस्थान	१०.०००/–
०६.	आर्य कन्या गुरुकुल ट्रस्ट हसनपुर	१०.०००/–
०७.	आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज, सिरोही, राजस्थान	१०.०००/–
०८.	श्री कृष्ण आर्ष गुरुकुल, देवलिया	१०.०००/–
०९.	श्रीमद् दयानन्द गुरुकुल विद्यापीठ गदपुरी, जि. पलवल, हरियाणा	२१.०००/–
१०.	श्रीमती चन्द्रावती कन्या गुरुकुल संस्कृत विद्यापीठ कासंगज, प्रहलादपुर	१०.०००/–
११.	परोपकारिणी सभा, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर	४.४२०/–

विद्या की वृद्धि हेतु दिये इस सराहनीय सहयोग के लिये परोपकारिणी सभा स्वामी विद्यानन्द जी का धन्यवाद करती है।

इतिहास ऐसे बनता चला गया

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

इस विषय की प्रेरक कुछ चुनी हुई घटनायें देने से पहले पाठकों के मन में उठने वाले एक प्रश्न का उत्तर देना बहुत उपयोगी रहेगा। एक बार महाराष्ट्र के एक आर्यसमाजी विद्वान् नेता ने इस लेखक से पूछा, जब आपसे किसी विषय से सम्बन्धित एक घटना पूछी जाती है, तो आप तत्काल उस विषय की एक साथ पाँच-सात घटनायें सुना देते हैं। आपको झट से एक जैसी इतनी घटनायें कैसे स्मरण हो आती हैं? उनको उस समय उपयुक्त उत्तर दे दिया गया।

एक बार सन् १९५० के आसपास पं. मेहरचन्द जी भजनोपदेशक लेखराम नगर कादियाँ में सन्ध्या करके भक्ति भाव से सत्यार्थप्रकाश की महिमा पर एक गीत गा रहे थे, तभी मैं आर्यसमाज मन्दिर में उनके पास पहुँच गया। भजन के पश्चात् मेरे एक प्रश्न का उत्तर देते हुये, आपने पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की विद्वत्ता व स्मरण शक्ति की प्रशंसा करते हुये कहा, ''उन्हें प्रत्येक विषय से सम्बन्धित असंख्य घटनायें याद हैं।''

मैं स्वामी जी महाराज को कई बार सुन चुका था। उनके लेखों को पढ़े बिना मुझसे रहा ही नहीं जाता था। पं. मेहरचन्द जी का यह कथन सुनकर मैंने मन में ठान लिया कि मैं भी ऐसा ही बनने का यत्न करूँगा।

कोई पन्द्रह वर्ष से ऊपर का समय बीत गया लगता है। गुजरात से एक २५-३० वर्षीय तेजस्वी विद्वान् ब्रह्मचारी मुझ से कुछ जानकारी लेने पहुँचा। उसने भक्तिभाव से मुझसे पहला प्रश्न इसी विषय में किया, ''आपकी असाधारण स्मरण शक्ति का रहस्य क्या है? आपको इतनी घटनायें कैसे प्रश्न पूछते ही एक साथ याद आ जाती हैं?''

जूनागढ़ के उस गुणी ब्रह्मचारी ने मुझे कहीं सुना होगा। मेरे लेख तो पढ़ता ही रहता था। मैंने उसे उत्तर देते हुये, चार-पाँच कारण बताते हुये, उपरोक्त घटना का संकेत करते हुए, यह भी कहा कि यह पूर्वजों के विशेष रूप से श्रद्धेय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के जीवन का प्रभाव समझिये। जीवन का कोई आदर्श, मनुष्य निश्चित कर लेता है, तो कुछ न कुछ अवश्य बन जाता है।

तभी तो एक बार प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति ने मुझे पत्र लिखकर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के लेखों तथा व्याख्यानों में दिये जाने वाले दृष्टान्तों (घटनाओं) को संग्रहीत करके ग्रन्थ रूप में जनता के सामने लाने की प्रेरणा दी थी।

आओ! आज अपने पाठकों की सेवा में महर्षि दयानन्द का मूल्याङ्कन करने में सहायक कुछ विशेष शिक्षाप्रद ऐतिहासिक महत्त्व की घटनायें यहाँ देने का प्रयास किया जाता है।

सन् १८९१ में एक बंगाली विधवा देवी श्रीमती मोहिनी मित्र (बाबू लालमोहन मित्र की विधवा) का लाहौर में देहली कॉलेज के प्रो. पूर्णचन्द्र मुखर्जी से पुनर्विवाह सम्पन्न हुआ। यह समाचार कई समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था। यह विवाह बंगाल में न हो सका और पंजाब में हुआ भी तो लाहौर के ब्राह्म समाज के मन्दिर में न हो सका। लाहौर में बड़े-बड़े बंगाली नेता, पत्रकार, राज्य अधिकारी विद्वान् रहते थे। एक भी बंगाली इस विवाह संस्कार में सम्मिलित न हुआ।

यह विवाह आर्यसमाज मन्दिर में न होकर आर्य नेता श्रीमान् लाला मुरलीधर जी के निवास पर हुआ था।[१] लाला मुरलीधर के घर पर उस समारोह के कारण तिल धरने के लिये स्थान न बचा। ऐसे क्रान्तिकारी प्रत्येक कार्य में महात्मा मुंशीराम जी का सहयोग तो रहता ही था। इस घटना से आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को चार चाँद

लग गये।

श्रीमती हरदेवी का पुनर्विवाह : श्रीमती हरदेवी के नाम व काम के बिना आर्यसमाज तथा आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य के इतिहास सर्वथा अधूरे ही समझे जाते हैं। हरदेवी जी का नाम व काम आधुनिक काल के समाज सुधार तथा धार्मिक जागृति के इतिहास में गौरव से लिए जाते हैं। आप आधुनिक लाहौर के निर्माता रायबहादुर कन्हैयालाल इन्जीनियर की पुत्री थीं। आपका जन्म सन् १८६० में हुआ था। सन् १८६१ में आप लन्दन अपने भाई के संग गईं। बाल विवाह होने के कारण भारत में विधवा हो चुकी थीं।

श्री लक्ष्मीनारायण बैरिस्टर भी आप लोगों के संग लन्दन गये थे। वहाँ आपने शैक्षणिक योग्यता की बढ़ोत्तरी की और आर्यसमाज की सेवा में भी सक्रिय रहीं। वहीं आर्यनेता श्री रोशनलाल जी से आपका परिचय व निकटता हो गई। वह विधवा हरदेवी से विवाह करने का विचार बना चुके थे।

भारत लौटे तो कायस्थ बिरादरी में दोनों के विवाह का घोर विरोध होता रहा। रोशनलाल जी पर किसी की जली कटी बातों तथा विरोध का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह सब के कुवचन सुनकर भी शान्त रहे। धीरे-धीरे अपनी समाज सेवा व योग्यता से श्रीमती हरदेवी ने अपने पति के साथ सार्वजनिक जीवन में बड़ा मान-सम्मान व यश पाया। हरदेवी का पुनर्विवाह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी।

सन् १८९९ तक श्री रोशनलाल के सब सगे सम्बन्धियों का व्यवहार प्रेमपूर्ण तथा प्रशंसनीय हो गया था। लन्दन में महाराजा चम्बा के ब्राह्मण सेवक चन्दन सिंह का महाराजा के फ्रांस यात्रा पर जाने के पीछे रुग्ण होने से हस्पताल में निधन हो गया। वहाँ के राजनियम अनुसार इस लावारिस चन्दनसिंह को ईसाई रीति से दफनाया जाने लगा था। तब लक्ष्मीनारायण मन्त्री आर्यसमाज ने अपने देशबन्धु धर्मबन्धु के शव का वैदिक रीति से दाहकर्म करने के लिये संघर्ष किया। आर्यसमाज को लन्दन में इससे बहुत प्रतिष्ठा व यश मिला। शव की शोभा यात्रा निकाली गई। आर्यसमाज के जयकारों की प्रेस में भी धूम मच गई। शोभा यात्रा में कई गोरे भी थे। हरदेवी ने भी आर्यसमाज की एक सक्रिय अग्रणी के नाते इसमें बढ़ चढ़ कर भाग लिया। उस युग में एक विधवा की समाज में कहीं प्रतिष्ठा नहीं थी। हरदेवी ने विदेश में ही नहीं स्वदेश लौटकर भी अपनी निष्काम सेवाओं से स्वर्णिम इतिहास में अक्षय यश को प्राप्त किया। उस काल में उसकी समाज सेवा से इतिहास को एक नई दिशा मिली। बन्ध कड़ियाँ टूटती देखी गईं। अन्धविश्वासों का एक-एक करके उन्मूलन होता गया।

हैदराबाद का सर्वधर्म सम्मेलन : यह घटना देश के स्वतन्त्र होने के बहुत समय बाद की है। तब हाफ़िज़ मुहम्मद इब्राहिम कांग्रेसी लीडर हैदराबाद के गवर्नर थे। उन्हीं की अध्यक्षता में किसी संस्था ने वहाँ सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन किया। कई मत पन्थों के प्रतिनिधि जब बोल चुके, तब आर्यसमाज के प्रतिनिधि के बोलने की बारी आई। आर्यसमाज की ओर से तब वहाँ पर माननीया पण्डिता सुशीला जी विद्यालङ्कृता का बोलने के लिये नाम पुकारा गया।

हाफ़िज़ मुहम्मद इब्राहिम आर्यसमाज के गढ़ बिजनौर क्षेत्र के थे। आप आर्यसमाज के बारे में बहुत कुछ सुनते तो रहे, परन्तु उस दिन आर्यसमाज की प्रतिनिधि के मञ्च पर आने पर आपने माईक के सामने खड़े होकर कहा कि मैं आर्यसमाज की गतिविधियों के बारे में बहुत कुछ सुनता तो रहा हूँ, आज मैं चाहूँगा कि आर्यसमाज की प्रतिनिधि यह बताने की कृपा करें कि आर्यसमाज की विचारधारा की अन्य मत पन्थों से क्या विलक्षणता या विशेषता है?

मान्य सुशीला जी माईक के सामने आते ही अध्यक्ष महोदय की माँग के बारे में बोली, "सब मत पन्थों का प्रतिनिधित्व यहाँ पुरुष वक्ता विद्वान् कर रहे हैं, केवल

आर्यसमाज का प्रतिनिधित्व करने का एक महिला को सौभाग्य प्राप्त है। क्या यह कोई छोटी विलक्षणता तथा विशेषता है?''

पण्डिता सुशीला की इस घोषणा को सुनते ही वहाँ उपस्थित आर्यसमाजी तथा आर्यसमाज के प्रेमी श्रोताओं ने बड़े जोश तथा उत्साह से करतल ध्वनि से सभा स्थल को गुञ्जा दिया। यह धार्मिक जगत् के इतिहास की एक बहुत न्यारी प्यारी घटना है। आर्यसमाज के स्वर्णिम इतिहास की भी यह एक अपूर्व घटना है। उस दिन पण्डिता सुशीला के मुख से तत्काल दिये गये इस उत्तर से तार्किक शिरोमणि आर्य विद्वान् पं. रामचन्द्र देहलवी जी की प्रत्युत्पन्नमति की याद आ गई।

आश्चर्य इस बात पर होता है कि मेरे सिवा कोई आर्यसमाजी वक्ता व विद्वान् यह प्रेरक घटना कभी नहीं सुनाता। हैदराबाद के आर्यसमाजी अपने इतिहास की इस अद्‌भुत घटना का प्रचार नहीं करते।

जिस विषय का ज्ञान न हो, उस पर चुप्पी ही भली : यह सेवक अनेक बार यह लिख चुका है कि जिस विषय का प्रामाणिक ज्ञान न हो, उस विषय में कुछ लिखना वा बोलना ठीक नहीं है। घातक है। फिर भी आर्यसमाज में कुछ लोग अपना पाण्डित्य दिखाने तथा विशेष रूप से इतिहास का उपहास उड़ाने के लिए अप्रामाणिक कल्पित मिथ्या बातें लिखते रहते हैं।

अभी इन्हीं दिनों चलभाष पर एक स्वाध्याय प्रेमी ने मुझे कहा कि आपने कई बार सप्रमाण यह लिखा है कि लाला लाजपतराय जी का वीर अजीतसिंह के किसान आन्दोलन से कुछ भी लेना-देना नहीं था, फिर भी आर्यसमाजी यह वाक्य परोसते ही रहते हैं। ६३-६४ वर्ष पूर्व मैं भी इस मिथ्या कथन का शिकार रहा। लाला लाजपतराय तथा उनके प्रशंसक सहयोगी रहे क्रान्तिकारी आर्यसमाजी लालचन्द जी फ़लक तथा लाला हरदयाल जी ने 'ख्यालात लाजपत' ग्रन्थ में खुलकर इस गप्प का प्रतिवाद किया है।

चलभाष पर यह चर्चा करने वाले बन्धु ने बताया कि एक आर्यविद्वान् ने एक लेख में अपने लम्बे विचारणीय लेख में फिर यह मनगढ़न्त कथन जोड़ दिया है। किसी अनाड़ी को जानकारी का स्रोत बनाना हितकर नहीं। लेखक ने अपने स्रोत का उल्लेख भी तो नहीं किया।

वह लेख आर्यमार्तण्ड में मुझे भी प्राप्त हो गया है। इसी लेख में आपने यह लिखा है, ''उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा शिवाजी, स्वामी दयानन्द, मेज़िनी, गेरीबालड़ी जैसे प्रसिद्ध लोगों की आत्मकथायें अनुवादित व प्रकाशित कीं।''

मेरी विनम्र विनती है कि ऋषि दयानन्द जी ने तो अपनी संक्षिप्त आत्मकथा अवश्य लिखी है। शिवाजी महाराज कोई विद्वान् साहित्यकार नहीं थे। उनकी जीवनी बड़े-छोटे अनेक साहित्यकार लिखते चले आ रहे हैं। लाला लाजपतराय जी श्रीयुत मेज़िनी की जीवनी के प्राक्कथन की समाप्ति पर लिखते हैं, ''यदि इन पृष्ठों को पढ़कर (जो संक्षिप्त किये गये हैं ताकि आप की प्रकृति के लिए बोझिल न हों) कुछ भी तप बलिदान का विचार आपके हृदय में उत्पन्न हो जावे तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा।''

इस समय इस पुस्तक का पहला (उर्दू) संस्करण मेरे सामने है। लाला जी के उपरोक्त शब्द इस बात का प्रमाण हैं कि यह उनकी मौलिक पुस्तक है। यह भारत में नवयुवकों में नवजीवन का संचार करने वाले किसी विदेशी महापुरुष की पहली जीवनी थी। सरकार इससे हिल गई।

एक बात यहाँ बताना हितकर होगा। लाला जी के लोकसेवक मण्डल की एक संस्था यहाँ भी है। वर्षों मैं उससे जुड़ा रहा था। दिल्ली से संस्था के कार्यालय से यहाँ एक कार्यकर्ता प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया गया। उसे पता चला कि लाला जी लिखित सब आरम्भिक काल की पुस्तकें मेरे पुस्तकालय में हैं। यह पता चलने पर वह हमारे निवास पर आया। शिवाजी, मेज़िनी आदि ग्रन्थों के दर्शन करने की उत्कट इच्छा

व्यक्त की। मैंने निकाल कर आगे रख दीं। उसने भक्तिभाव से उठाकर अपने माथे को लगाकर बहुत आभार प्रकट किया। लक्ष्यहीन व्यक्ति तो दूसरों को भ्रमित करने में लगे रहते हैं।

जिस घटना का-विषय का ज्ञान न हो : आर्यसमाज के निर्माता-नेता तथा पुराने सब बड़े-बड़े विद्वान् जिस घटना का (विषय का) ज्ञान न हो, उस पर वाणी व लेखनी से कुछ बोलते व लिखते नहीं थे। यदि अनजाने में लिखने व बोलने से कुछ भूल हो भी गई, तो वह खेद प्रकट कर देते थे। क्षमा माँग लिया करते थे। इसी में उनका बड़प्पन था। आर्यपत्रों की पुरानी फाइलों में इसके पर्याप्त प्रमाण मिल जाते हैं।

अभी वर्तमान काल में मुझसे अनजाने में एक भूल हो गई। मैंने कहीं लिख दिया और डॉ. वेदपाल जी से कह दिया कि आपने पत्रव्यवहार ग्रन्थमाला भाग दो में श्री कमलनयन शर्मा अजमेर के ऋषि जी को २५-०९-१८८३ के लिखे पत्र का उल्लेख नहीं किया। आपने चलभाष पर बात करते हुए कहा, ''नहीं, यह पत्र उस संग्रह में छपा है।''

यह पत्रव्यवहार निर्देशिका मैंने ही तैयार की थी। निर्देशिका में कमलनयन जी के पत्रों का उल्लेख पृष्ठ ६८८ व ६८९ दो पृष्ठों पर आता है। मैंने लेख लिखते हुए पृष्ठ ६८८ तो देखा आगे का पृष्ठ देखा ही नहीं।

मैंने डॉ. वेदपाल जी से चलभाष पर तो क्षमा याचना की ही, एक लेख में भी हार्दिक खेद प्रकट कर दिया। इससे मैं कोई छोटा तो हो नहीं गया। आर्यसमाज की शोभा भी ऐसा करने से अवश्य बढ़ गई।

हुतात्मा सुखदेव को ये जानते ही नहीं : स्वराज्य संग्राम में आर्यसमाज के योगदान पर लेख व पुस्तकें लिखने वाले लेखक अधिकारी विद्वान् बनकर लेखनी चलाते रहते हैं। गत दिनों एक ऐसी पुस्तक हिन्दी व अंग्रेज़ी में छपी। उसमें बहुत गड़बड़ पाई। भारत के वायसराय पर किसी क्रान्तिकारी ने एक ही बार दिल्ली के चाँदनी चौक में गोली मारी। वायसराय लार्ड हार्डिंग तो बच गया। उसका एक रक्षक पुलिस का अधिकारी उस गोली से मारा गया।

इस घटना के कारण भाई बालमुकन्द, हुतात्मा प्रतापसिंह आदि कई दृढ़ आर्य फांसी दण्ड पाकर वीर गति पा गये। गोली मारने की एक ऐसी ही घटना लाहौर में भी घटी। पंजाब के गोरे गवर्नर पर वीर सुखदेव (एक आर्यसमाजी) ने गोली मारी। साथ में डॉ. राधाकृष्णन भी खड़े थे। उनको बचाने के प्रयास में निशाना चूक गया। गवर्नर बच गया। अंगरक्षक को गोली लगी। मुसलमानों के कब्रिस्तान में हमारे वीर क्रान्तिकारी का दाहकर्म किया गया। किसी घर वाले अथवा देशप्रेमी को पास फटकने तक न दिया गया।

यह सारा परिवार दृढ़ आर्यसमाजी था। शहीद सुखदेव के भाई भक्तराम ने ही नेता जी सुभाषचन्द्र को देश से विदेश पहुँचाने में एक मौलवी के रूप में सहयोग किया था। इनका तीसरा भाई भी बाल्यकाल से जोशीला आर्यसमाजी था। फ़िरोजपुर में आर्य कुमार सभा का अधिकारी था। इस विनीत को मिलने, धर्म चर्चा करने अबोहर घर कई बार आता रहा। वह गंगानगर के आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में भी मुझे मिलता रहा।

इन नये-नये इतिहासकारों ने इस परिवार का इस पोथे में उल्लेख नहीं किया। बारहट परिवार की ऋषि भक्ति व देश सेवा पर किसी ने कुछ नहीं लिखा। श्री कृष्णसिंह बारहट के ग्रन्थ में ऋषि के बलिदान तक की चर्चा नहीं पढ़ी। बारहट जैसे क्रान्तिकारी का ऋषि के जीवन में उल्लेख महर्षि दयानन्द के तत्कालीन महापुरुषों से विलक्षणता का प्रमाण है। क्या ऐसी चूक आर्यसमाज के नये-नये लेखक करते चले जावेंगे?

लाला लाजपतराय जी की दूरदर्शिता : लाला लाजपतराय हमारे देश के पहले ऐसे नेता थे, जिन्हें देश प्रेम के कारण गोराशाही ने देश से निष्कासित करके

माण्डले के दुर्ग में बन्दी बना दिया। इनके कुछ ही दिन बाद वीर अजीतसिंह किसान आन्दोलन के कारण बन्दी बनाकर उसी दुर्ग के एक अलग कमरे में रखे गये।

बन्दी बनने से थोड़ा समय पहले आपने अपने एक भाषण में कहा था, "ऐसा देशभक्त संन्यासी कहाँ है, जो अपने देश के लिये संगीनों से सीना अड़ा सके।[२]" दूरदर्शी पूज्य लाला जी इस दृश्य को अपनी आँखों से देख रहे थे। इस भाषण के ठीक बारह वर्ष पश्चात् आपके ही एक पूज्य धर्मबन्धु-संगी साथी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने दिल्ली के चाँदनी चौक में गोराशाही की संगीनों से सीना अड़ाने के लिये नंगी छाती खोलकर सरकार को निर्दोष जनता पर गोली न चलाने के लिए ललकारा। यह विश्व इतिहास की ऐसी इकलौती घटना है।

तब लाला जी विदेश में थे। आपने स्वामी जी को एक पत्र में [यह घटना पढ़कर] लिखा था, "मुझे आप पर अभिमान है।[३]"

आर्यसमाजी इस व्याख्यान की, लाला जी की दूरदर्शिता की, चर्चा ही नहीं करते। तभी तो न पंजाब सरकार और न केन्द्र सरकार ने लाला जी के बलिदान पर्व पर चुप्पी तोड़ी। मैं और क्या लिखूँ?

तीन प्रश्नों का उत्तर : सनातन धर्म की दुहाई कुछ राजनेताओं के लिये फैशन सा बन गया है। विधवाओं के पुनर्विवाह, बहुविवाह, बालविवाह, अनमेल विवाह का विरोध और इस विषय पर आर्यसमाज से शास्त्रार्थ सनातन धर्मी किया करते थे। जातपात, ऊँच-नीच और अस्पृश्यता सनातन धर्म था। मन्दिरों में दलितों का प्रवेश न होने देना। विनोबा जी के साथ दलित काशी में मन्दिर प्रवेश करने लगे तो सन् १९५३ में पिट गये। हिन्दुत्व की रट लगाने वाले सनातन धर्मी तब मौन रहे। मैं तब जालन्धर कॉलेज में पढ़ता था। मेरा इस कुकृत्य की निन्दा में लेख छपा था। जिन्होंने ऊँच-नीच, जाति भेद, अस्पृश्यता मिटाने के लिये तथा दलितोद्धार के लिये दु:ख, कष्ट झेले और बलिदान दिये उनका तो नाम तक लेने से ये सत्ताधारी डरते हैं। इन्होंने सनातन धर्म के नाम पर किये गये अत्याचारों पर कभी दो शब्द न कहे। बुराई से लड़ाई तो आर्यसमाज के धर्मयोद्धा लड़ते-लड़ते जानें वार गये।

एक बन्धु ने पूछा : पहले भी कभी किसी ने पूछा था, "क्या पं. नरेन्द्र जी आपको भाई मानते थे?" मैंने पूछा, "आपको यह कैसे पता चला?" उस सज्जन ने कहा, "डॉ. कुशलदेव जी ने आपके नाम उनका लिखा एक पत्र प्रकाशित किया है। उसमें आपके लिये भाई शब्द का प्रयोग किया गया है।"

मैंने कहा, "वे पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के शिष्य थे। पं. सुधाकर जी भी उनके शिष्य रहे। स्वामी जी महाराज मेरे भी गुरु व निर्माता थे। इसलिये ये दोनों इस कारण प्यारभरे हृदय से मुझे गुरु भाई मानते थे और भरपूर प्यार देते रहे।"

इतना कुछ झट से कैसे सूझ जाता है? : कभी बैंगलूर में एक बहुत बड़े अंग्रेजी दैनिक के सम्पादकीय विभाग के पत्रकार ने पूछा, "आपके प्रत्येक व्याख्यान में कई पुस्तकों के नाम, प्रमाण, सन् संवत् व घटनायें सुनने को मिलती हैं। ये सब सत्य होती हैं इसका कारण क्या है?" मैंने तब विनम्रता से कहा, "इस प्रश्न का उत्तर मैं क्या दूँ? मेरे निर्माता मेरे पिताजी, मेरे ताऊजी, ग्राम के पुराने आर्यसमाजी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, मेहता जैमिनि, महाशय कृष्ण, महात्मा आनन्द स्वामी जी, पं. भगवद्दत्त जी, पं. शान्तिप्रकाश जी, श्री आचार्य उदयवीर, साहित्य पिता पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय ही दे सकते थे। यह उनकी कृपा, आशीर्वाद, मार्गदर्शन का फल है। उन्होंने मेरा ऐसा निर्माण किया। वैदिक जीवन पद्धति अपनाने का इसे फल मानिये।" **शेष फिर**

टिप्पणी :

१. द्रष्टव्य स्वामी श्रद्धानन्द की जीवन-यात्रा

२. द्रष्टव्य 'ख्यालाते लाजपत' उर्दू ग्रन्थ सम्पादक लालचन्द 'फलक।'

३. श्री पं. इन्द्र जी लिखित 'मेरे पिता' में इस पत्र का उल्लेख है।

उपनिषद् वाङ्मय के अनुसार ईश्वर प्राप्ति के अयोग्य व्यक्ति

आचार्या सुमन (साधना)

विभिन्न उपनिषदों में ईश्वर को प्राप्त करने के योग्य व्यक्तियों का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। इसके साथ-साथ उन व्यक्तियों की भी चर्चा उपनिषद् वाङ्‌मय में की गई है, जो ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। जैसे कि मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है-

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम।।

(मुण्ड. ३.४)

जो शारीरिक-मानसिक-बौद्धिक और आत्मिक बल से वंचित व्यक्ति है, वह ईश्वर को नहीं प्राप्त कर पाएगा तथा जो प्रमादी व प्रयोजनहीन तपस्या करने वाला है, वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि जब तक तन व मन स्वस्थ नहीं होगा, बुद्धि शुद्ध नहीं होगी और आत्मा बलवान नहीं होगा तब तक ईश्वर-प्राप्ति के साधनों का अनुष्ठान नहीं हो पाएगा और उसके अभाव में ईश्वर की भी प्राप्ति नहीं होगी। इसी प्रकार जो व्यक्ति कामनाओं को ही सब कुछ मानता और जीवन भर कामनाओं की ही पूर्ति करने में लगा रहता है वह ईश्वर को प्राप्त नहीं होता, अपितु कामनाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता रहता है और संसार को भोगते हुए दु:ख उठाता रहता है-

''**कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।**''

(मुण्ड. ३.२)

जो व्यक्ति बड़े-बड़े आत्मा-परमात्मा प्राप्ति के मात्र प्रवचन करता व सुनता है उसे भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि जैसे गुड़-गुड़ कहने से मुंह मीठा नहीं होता, उसे खाने से मीठा होता और भूख-भूख कहने से भूख नहीं मिटती, अपितु भोजन खाने से भूख मिटती है। इसीप्रकार ईश्वर के व उसकी प्राप्ति के साधनों की चर्चा करने मात्र से ईश्वर की प्राप्ति व्यक्ति को नहीं हो सकती, अपितु उसका अनुष्ठान करने से ईश्वर की प्राप्ति होती है। बहुत अधिक तर्क-वितर्क करने मात्र से तथा बहुत कुछ पढ़ने-लिखने मात्र से व्यक्ति को ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, अपितु उस विद्या को आचरण में लाने वाले को ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

''**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।**''

(मुण्ड. ३.३)

मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मुण्डक में भी कहा गया है कि-

''**अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।**
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।।''

(मुण्ड. १.९)

विभिन्न प्रकार की अविद्या में डूबे हुए है और अपने आप को पूर्ण समझने वाले बालबुद्धि लोग ईश्वर की प्राप्ति कभी नहीं कर सकते। वे सांसारिक कार्यों में अत्यधिक अनुरक्त होते हुए अधोगति को प्राप्त होते चले जाते हैं। इसी प्रकार जो लोग इष्ट और आपूर्त्त अर्थात् यज्ञ-याग आदि कर्मकाण्ड को तथा दान आदि को सब कुछ समझ लेते हैं इससे ऊपर कुछ श्रेष्ठ कर्म नहीं मानते हैं ऐसे लोग भी ईश्वर को प्राप्त न करके दु:खद योनियों को प्राप्त होते हैं-

''**इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।**

नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेयं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।।''

(मुण्ड. १.१०)

कठोपनिषद् में भी कहा है-

''पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।''

(कठो. ४.२)

जो अज्ञानी लोग बाहर फैली हई कामनाओं अर्थात् विषयों के पीछे जीवन भर दौड़ते रहते हैं उन्हें कभी पकड़ नहीं पाते हैं वे मृत्यु रूपी जाल में फंसते चले जाते हैं, ईश्वर को कभी प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसी प्रकार कठोपनिषद् की तृतीय वल्ली में भी कहा है कि-

'यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारमधिगच्छति।।'

जो विज्ञान-रहित है, जिसका मन आत्मा व परमात्मा से युक्त न होकर संसार की ओर भागता रहता है तथा जिसके विचार पवित्र न होकर अपवित्र रहते हैं, वे उस परम पद को न पाकर इन्द्रियों और मन के वशीभूत होकर संसार में भटकते रहते हैं और जन्म-मरण के चक्कर में उलझते रहते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा है कि-

''नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।''

(कठो. २.२४)

जो व्यक्ति दुराचार करने से नहीं हटा है तथा जिसका मन शान्त नहीं रहता है एवं जो कुतर्क-वितर्क में उलझा रहता है, जिसका चित्त चञ्चलता से युक्त रहता है, वह व्यक्ति उस ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता है।

ईशोपनिषद् में भी तीसरे मन्त्र में कहा है-

''असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।''

जो लोग अपनीआत्मा का हनन करते हैं अर्थात् आत्मा की पुकार को नहीं सुनते हैं वे गहरे अज्ञान वाले लोकों अर्थात् पशु-पक्षी आदि योनियों को प्राप्त होते हैं। इस मन्त्र का भी तात्पर्य यही है कि आत्महनन करने वाला व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता है।

'अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।।'

(ईश. ९)

जो व्यक्ति अविद्या अर्थात् भौतिकवाद में ही रत रहते अध्यात्मवाद की परवाह नहीं करते हैं, वे गहन अन्धकार को अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं तथा जो केवलमात्र अध्यात्मवाद में ही लगे रहते हैं, भौतिकवाद की परवाह नहीं करते हैं वे लोग इससे भी अधिक गहन अन्धकार को प्राप्त होते हैं, उस व्यक्तिवाद को ही महत्त्व देते हैं संगठन को महत्त्व नहीं देते हैं एवं जो लोग संगठन को ही महत्त्व देते हैं स्वयं को कोई महत्त्व नहीं देते हैं ऐसे व्यक्ति भी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। जैसे कि हमारे आदर्श पुरुष महर्षि दयानन्द के जीवन का दृष्टिपात करते हैं तो वहाँ उनके जीवन में न केवल स्वयं अर्थात् व्यक्तिवाद की उपासना देखी जाती है वे संगठन की परवाह करते हुए भी दिखाई देते हैं और न ही केवल संगठन की परवाह करते हुए दिखाई देते हैं, अपितु महर्षि ने स्वयं की परवाह की है। इसीलिए वे ईश्वर को प्राप्त हुए।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः।।

(ईश. १२)

इसी प्रकार ईशोपनिषद् के पन्द्रहवें मन्त्र 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं:' का भी तात्पर्य यही है कि उस सत्यस्वरूप परमात्मा का स्वरुप इस भौतिक चकाचौंधरूपी ढक्कन से ढका हुआ है। इस ढक्कन को जो लोग नहीं हटा पाते वे उस सत्यस्वरूप परमपिता परमेश्वर को नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार उपनिषद् वाङ्मय में ईश्वर प्राप्त करने में अयोग्य व्यक्तियों का वर्णन विभिन्न स्थलों पर वर्णित है।

ज्ञानसूक्त - ०८

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी श्रृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

हम ज्ञानसूक्त की चर्चा कर रहे हैं। ज्ञानसूक्त के नाम से प्रसिद्ध ग्यारह मन्त्र ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ७१वें सूक्त में वर्णित है। उन मन्त्रों की चर्चा में हम ज्ञान का मूल्य, ज्ञान का महत्त्व क्या है, कैसे है, यह देखते हैं। इसका ऋषि बृहस्पति और इसका देवता ज्ञान है। हमने इसके दूसरे मन्त्र की चर्चा करते हुए देखा था कि ज्ञान मनुष्य को अज्ञान से अलग करने की क्षमता देता है। सब कुछ जो हमारे पास है, वह मिश्रित है, मिलाजुला है उसमें से अनुकूलता को लेना प्रतिकूलता को छोड़ देना, यह सामर्थ्य, यह जो योग्यता है, यही ज्ञान की कसौटी है। संस्कृत साहित्य में एक बड़ा सुन्दर सा श्लोक आता है। वहाँ बताया गया है कि बुद्धिमान् व्यक्ति क्या करता है।

हंसैर्यथा क्षीरम् अम्बुमध्यात्। संसार में एक प्राणी है जिसे हम हंस कहते हैं। वह दूध और पानी को यदि मिला दो, उसे दुनिया की और कोई चीज तो अलग नहीं कर सकती। लेकिन हंस उस नीर-क्षीर का विवेक कर सकता है। इसलिए हमारे यहाँ नीर-क्षीर न्याय बहुत प्रसिद्ध है। किसी में कोई अनावश्यक मिली हुई चीज है, उसमें से आवश्यक को निकाल लेना, उस आवश्यक का उपयोग करना, यह विद्वत्ता की सबसे बड़ी कसौटी है। इसके लिए हमारे पास जो ज्ञान है, वो बिना परम्परा के नहीं आता, बिना दिए नहीं आता। इसकी चर्चा हम पीछे कर चुके हैं, क्योंकि ज्ञान नैमित्तिक है। वह दूसरे से प्राप्त करना होता है। इसलिए हमारे पास एक गुरु होना चाहिये, एक वेदज्ञ, विद्वान् होना चाहिए जो हमें वेद को बता सकता हो, समझा सकता हो। जो गुरु है, उसका महत्त्व बहुत अधिक है। आजकल भी गुरु बनाकर लोग उसका महत्त्व बताते हैं। गुरुपने का महत्त्व केवल अच्छाई के लिए नहीं होता, बुराई में भी गुरुपने का महत्त्व होता है। कोई जेबकतरों का उस्ताद होता है, कोई चोरों-डकैतों का उस्ताद होता है। वैसे ही अच्छी बातें सिखाने वाला भी एक गुरु होता है। इसके लिए निरुक्त में एक बहुत सुन्दर श्लोक आया है कहा- **'विद्या ह वै ब्राह्मणम् आजगाम, गोपाय मे शेवधिष्टे अहम् अस्मि।'** कहता है कि विद्या जो है वो खजाना है। ज्ञान जो है वो निधि है, कोष है। विद्या एक बार ब्राह्मण के पास आयी, ज्ञानवान के पास, विद्वान् के पास आयी और उसने विद्वान् से एक बात कही- अहम् ते शेवधि अस्मि, मैं तुम्हारा खजाना हूँ, मैं तुम्हारी सम्पत्ति हूँ। तो गोपाय मा तुम उसकी रक्षा करो, उसे बचाओ। उसे कैसे बचायेगा कोई, क्योंकि कोई धन है, वस्तु है, खेत है, दुकान है उसको बचाने की बात तो समझ में आती है कि कोई छीन लेगा और हमें उसे बचाना है। लेकिन विद्या को आप कैसे

बचाओगे? क्योंकि विद्या तो आपसे कोई छीन भी नहीं सकता। संस्कृत साहित्य में इसके लिए बड़ी सुन्दर पंक्ति है कि विद्या धन सबसे मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण है- **न चौर हार्यम्, न च राज हार्यम्, न भ्रातृ भाज्यम्, न च भारकारी। व्यय कृते वर्धतेएव नित्यम्, विद्या धनम् सर्व धन प्रधानम्।** दुनिया की सारी सम्पत्तियाँ जो हैं, कोई न कोई चुरा सकता है, लूट सकता है। लेकिन यह जो ज्ञान की सम्पत्ति है इसे चोर हरण नहीं कर सकते। राजा कहीं टैक्स के रूप में वसूलता है, कहीं निलामी करके, कहीं छीन लेता है, लेकिन राजा भी विद्या धन को नहीं ले सकता। यदि हमारे पास कोई धन-सम्पत्ति इकट्ठी हो गयी है तो भाई कहते हैं इसे बाँटो। जितना अधिकार तुम्हारा इस सम्पत्ति पर है उतना परिवार के नाते हमारा भी है। लेकिन परिवार में कोई ज्ञानवान है, कोई विशेष योग्यता का व्यक्ति है तो उसकी योग्यता नहीं बाँटी जा सकती। वह उसकी अपनी ही रहती है और उससे भी एक महत्त्वपूर्ण बात है न च भारकारी। वस्तएँ कैसी भी, कोई भी हों, कितनी भी मूल्यवान् हो, उनमें वजन होता है, भार होताहै। जैसे सोना है, तो ऐसा नहीं है कि आप सारा सोना उठाकर ले जा सकते हैं। जैसे लोहा पाँच सेर-दस सेर उठाकर ले ज सकते हैं, वैसे ही सोना भी इससे अधिक उठाकर नहीं ले जा सकते हैं। तो जो आपकी सम्पत्ति है, वो सीमित है। उसका वजन आप उतना ही ले सकते हैं, जितना सम्भाल सकते हैं। लेकिन विद्या हमारे पास कितनी भी हो, वो कभी भी हमारे लिए भारभूत नहीं होती। एक और बहुत महत्त्वपूर्ण बात विद्या के बारे में कही है- दुनिया में ऐसा कोई खजाना नहीं है जिसमें खर्च करा और कम न हो। हमारे पास सोना, चाँदी, गहना, कपड़ा है, जितना उपयोग करेंगे उतना समाप्त होता जाएगा। हम पैसे कितने भी बैंक में रखें, निकालते रहेंगे तो वे कम होते रहेंगे। लेकिन यह ज्ञान रूपी जो धन है, यह जो विद्या रूपी सम्पत्ति है, इसके बारे में कहा गया **'व्यय कृते वर्धते एव नित्यम्'** आपको इसको जितना काम में लाते हैं। जितना उपयोग करते हैं, जितना बाँटते हैं, विद्या उतनी-उतनी बढ़ती जाएगी। यह इसकी विचित्रता है, यह इसकी विशेषता है। इसलिए दुनिया में जितने धन हैं उन सब धनों में सबसे बड़ा ज्ञान का धन है, विद्या का धन है।

तो वह विद्या कहती है विद्वान् से कि अब तुमको लूटा तो नहीं जा सकता, छीना नहीं जा सकता, तो फिर इसका बुरा क्या हो सकता है। तो इस के लिए निरुक्त में एक जगह लिखा है कि जो अज्ञानी है वो ज्ञान में सदा असूया रखता है। **'नित्यं हि अविज्ञातुर् विज्ञाने असूया।'** यास्क कहता है, अविज्ञातुः जो मूर्ख है, जो नहीं जानता है उसकी विज्ञान के प्रति, विज्ञान के जानने वाले के प्रति असूया, ईर्ष्या होती है। इसलिए जैसे इस पंक्ति में कहा है, निरुक्त में भी अलग से कहा है कि किसे पढ़ाना? तो कहा कि ऐसे ही मत पढ़ा देना किसी को, ऐसे ही मत बता देना। कहा कि **'न वैयाकरणाय नानुपसन्नायानिदंविदे वा।'** जो समझने के लायक नहीं है, उसको नहीं बताना। जो अहंकारी है उसको भी मत बताना। लेकिन यदि कोई नजदीक आकर पूछता है तो बताना अवश्य- उपसन्नाय तु निर्ब्रूयात्। जो पूछने के लिए आया है, उसको जरूर बताना, जो जान सकता है, उसको बताना। तो कहा कि विद्या ने कहा है कि किसको मत बताना, किससे मुझे छुपाना- जो मूर्ख व्यक्ति है, जो योग्य नहीं है, जिसके अन्दर सीधा नहीं, अपितु उल्टा अर्थ करने की प्रवृत्ति है उससे बचाना, उसको मत देना। ऐसे व्यक्ति को मत देना जो इसका दुरुपयोग करता हो। **असूयकाय अनृजवे अयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्।** मुझे उसको मत देना, असूयकाय- जो ईष्या करने वाला है। अनृजवे- जो कुटिल है। अयताय- जो परिश्रमी नहीं है, आलसी है, अकर्मण्य है, न मा ब्रूया, ऐसे को मत बताना, ऐसे को उपदेश देने की जरुरत मत समझना। क्यों? वो इसको व्यर्थ कर देगा। इसलिए

विद्या जो है वो कौन जान सकता है? जो उसकी योग्यता रखता है, जो उसकी समझ रखता है।

तो इस मन्त्र में जो विशेष बात कही गयी है जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं, वह है अत्रा सखायः सख्यानि जानते मतलब इतनी जिसके अन्दर योग्यता है वही इसको समझता है, जानता है, जान सकता है। उसमें दो चीजें हैं भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि- वाचि भद्रा लक्ष्मी निहिता ऐषाम्। जो व्यक्ति ज्ञानपूर्वक बोलता है, जो व्यक्ति वेद पढ़कर बोलता है, जो व्यक्ति विवेक से बोलता है, उसके बोलने में 'भद्र' कल्याण होता है और ऐश्वर्य होता है। अर्थात् कल्याण और ऐश्वर्य में क्या अन्तर है? वेद का एक मन्त्र आता है- **भद्रो नो सुभग अध्वरः भद्रा रातिः भद्राऽउत प्रशस्तय।** वेद में भद्र शब्द का बहुत प्रयोग है। यह वेद का विशेष शब्द है। संस्कृत में, यदि आप इस पर विचार करें तो भद्र शब्द का अर्थ है कल्याण सुख। यहाँ सुख तो मेरी वर्तमान दशा का बोधक है, अर्थात् मुझे करते हुए अच्छा लगना। कभी-कभी ऐसा होता है कि मैं परिश्रम तो बहुत करता हूँ। परिश्रम के बाद मुझे जो उसका फल अच्छा लगता है, उसका फल ठीक मिलता है। वह फल जो है, वह कल्याणम् है, परिणाम है और जो वर्तमान है वह सुखम् है। जो अच्छी चीज है उससे मेरा वर्तमान भी अच्छा होता है और जो अच्छी चीज है उसका परिणाम भी अच्छा होता है। तो भद्र जो है वो आज के लिए भी ठीक है और परिणाम के लिए भी ठीक है। ऐसी जो बात है, ऐसा जो काम है, ऐसा जो कथन है, वो भद्र है अर्थात् उसमें आज जो कह रहा है, सामने जो कह रहा है, वो भी गलत नहीं है और उसके पालन करने से, उसके मानने से, उसका होने वाला जो परिणाम है वह भी गलत नहीं होगा यह भद्रता है। अर्थात् उसमें वर्तमान में भी सुख होना चाहिए और परिणाम में भी अच्छा होना चाहिए। तो यहाँ पर जो बात कही है कि विद्वान् की जो वाणी है, एक वेद जानने वाली की जो वाणी है वो 'भद्रैषाम् लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि' ऐषाम् वाचि लक्ष्मी निहिता। की दृशी लक्ष्मी? भद्रा। ऐसे लोगों की वाणी में कल्याण करने वाली जो लक्ष्मी है, ऐश्वर्य है, सम्पन्नता है, योग्यता है वो निहिता अर्थात् रहती है, क्योंकि इस कल्याण को जो जानते और समझते हैं, वही इस बात का महत्त्व समझ सकते हैं, जान सकते हैं।

हम यदि इस पूरे मन्त्र को देखें तो यह बात हमें अच्छी तरह से समझ में आ जाती है कि वाणी पर विवेक से काम करना मुख्य चीज है और विवेक की कसौटी है कि हम जो बात कह रहे हैं, जिन लोगों से कह रहे हैं उनके हित की होनी चाहिए, वर्तमान में उनके लाभ की होनी चाहिए और परिणाम में उनके भले की होनी चाहिए। तो ज्ञान का जो उद्देश्य है, ज्ञान का जो परिणाम है वो इसीलिए कहा है 'सुख।' इसलिए वेद हमें कभी भी ज्ञान से विपरीत करने की प्रेरणा नहीं दे सकता। वो जब भी प्रेरणा करता है तो ज्ञान के साथ चलने की प्रेरणा करता है।

एक मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है और अथर्ववेद की प्रारम्भिक पंक्तियों में है- '**संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि।**' श्रुत ज्ञान को कहते हैं। अर्थात् ज्ञान क्या? केवल जान लेना, केवल बुद्धि में रख लेना यह पर्याप्त नहीं है। तो गमे महि- गमन करना, अर्थात् आचरण करना। जो हमने सुना है, जाना है, समझा है। जो अच्छा जाना, समझा है उसके अनुकूल आचरण करना यह हमारा धर्म है। जब हम कहते हैं कि हम वैदिक धर्मी हैं तो इसका अर्थ होता है कि वेद ने हमें बताया है, सिखाया है हम उसको अपने काम में लाते हैं, केवल सुनते नहीं है। उसे उपयोग में लाकर अपना वर्तमान भी और अपना भविष्य और परिणाम भी सुधारते हैं, अच्छा करते हैं। इसलिए मन्त्र में कहा गया है -

'भद्रैषाम् लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।'

आओ! धर्म को धर्म बनाएँ

आचार्य रामनिवास 'गुणग्राहक'

शीर्षक अटपटा लग रहा होगा न? चलो तनिक चिन्तन करें और इसे चटपटा बनाएँ। जब वेद मनुष्य को मनुष्य बनने का आदेश 'मनुर्भव' कह कर दे सकता है, तो हम धर्म को धर्म बनाने का अभियान क्यों नहीं चला सकते? मनुष्य जैसा दिखने वाला हर प्राणी मनुष्य नहीं हो सकता, तो धर्म जैसे दिखने वाले मत-पन्थ धर्म क्यों कर हो सकते हैं? महर्षि मनु **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** की घोषणा करके वेद प्रतिपादित कर्म को ही धर्म मानते हैं, उसके विपरीत को अधर्म। महर्षि कणाद **'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः'** का सूत्र देते हैं कि जिन कर्मों से हमारी सांसारिक समृद्धि और मोक्ष प्राप्ति हो, वे धर्म की कोटि में आते हैं। तत्त्वदर्शी ऋषियों की धर्म सम्बन्धी इन मान्यताओं की कसौटी पर जो खरे सिद्ध नहीं होते, उन्हें धर्म कहना या तो बुद्धिहीनता है या ऋषि-द्रोह। हम बुद्धिहीन भी नहीं कहलाना चाहते और ऋषि द्रोह का कलंक हमारे माथे पर लगाया जाए तो यह भी हमें स्वीकार नहीं। सच मानिये कि इसी रास्ते पर चलते रहे तो चाहे हम स्वीकार करें या न करें, लेकिन ईश्वर की कर्मफल व्यवस्था में हमें इसका दण्ड भोगना ही होगा तथा आने वाली पीढ़ी जब हमारा इतिहास लिखेंगी, तब वह हमें या तो मूर्ख कहेगी या ऋषि द्रोही। धर्म के मामले में हम इस कलंक से बचना चाहते हैं, तो हमें धर्म को धर्म बनाने का अभियान चलाना ही पड़ेगा। धर्म के नाम पर कुछ भी स्वीकार लेने की प्रवृत्ति को बदलना ही पड़ेगा। जिन्हें धर्म के स्वरूप का ज्ञान नहीं, वो धर्म के नाम पर कुछ भी स्वीकार कर लें तो यह उनकी अज्ञानता है। भारत तो समस्त ज्ञान-विज्ञान और धर्म-संस्कृति का जन्मदाता रहा है। विश्व ने वही सीखा, जो हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने उन्हें सिखाया। ऐतिहासिक तथ्य प्रमाणित करते हैं कि हमसे प्राप्त ज्ञान-विज्ञान को विदेशी लोग धर्म-संस्कृति के क्षेत्र में सुरक्षित नहीं रख सके। धर्म पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने जो संग्रहीत किया, उसका अवलोकन करने से पता चलता है कि उनमें न धर्म तत्त्व के दर्शन होते हैं और न संस्कृति के।

सौभाग्य से हमारे पास अपने तत्त्वज्ञानी ऋषियों के धर्मशास्त्र आज भी सुरक्षित हैं। हाँ, महाभारत युद्ध के बाद इस देश में राज्य-सत्ता और धर्म-संस्कृति की परम्परा क्षीण होती चली गईं। परिणामतः न्याय व्यवस्था और दण्डनीति अस्तव्यस्त होने लगी और संस्कृत विद्या के पठन-पाठन में भी हम आलसी-प्रमादी होकर पिछड़ने लगे। इसका प्रतिफल यह निकला कि हम संस्कृत विद्या से विहीन होकर अपने ऋषियों के लिखे धर्मशास्त्रों के मूल तत्त्व को समझने में असमर्थ हो गये। ऐसी स्थिति में- **'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्नाः'** को चरितार्थ करते हुए हमारे अधकचरे आचार्यों ने धर्मशास्त्रों के मनमाने अर्थ करके धर्म के सम्बन्ध में ऐसी भ्रम की स्थिति बना दी कि हम सत्य धर्म की शाश्वत कसौटी को भुला बैठे। आश्चर्य तो इस बात का है कि मनुस्मृति दर्शन साहित्य, रामायण व महाभारत आदि ग्रन्थों में धर्म की स्पष्ट व सटीक परिभाषाओं के रहते हुए भी हमारे धर्माचार्य धर्म विषय में इतने भ्रान्तिग्रस्त कैसे हो गये? मनु ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर रखी है- 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति।' अर्थात् धर्म-जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण है। इतना ही नहीं धर्म के दस लक्षण बताकर धर्म की व्यावहारिक कसौटी भी हमें दे दी कि इन दस मानवीय गुणों से युक्त मनुष्य ही धर्मात्मा है। इनके होते हुए भी तिलक-छापे, कण्ठी-माला, तीर्थ स्नान और मठ-मन्दिर आदि बाहरी दिखावटें धर्म कैसे मान ली गईं? मनु जी ने स्पष्ट लिखा है- **''नास्ति सत्यात् परो धर्मः न अनृतात् पातकं परम्''** अर्थात् सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं और

झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं। फिर अनेक प्रकार के अन्धविश्वास, पाखण्ड और बुद्धि विरुद्ध मान्यताएँ धर्म के अंग कैसे बनती चली गईं? **''यस्तर्केण अनुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतरः''** अर्थात् जो तर्क से सिद्ध किया जा सके वही धर्म है, उससे भिन्न नहीं। इस वचन के रहते हुए भी अतार्किक विचार, अवैज्ञानिक मान्यताएँ, असिद्ध सिद्धान्त धर्म के रूप में धड़ल्ले से कैसे चलते रहे? धर्म के रूप में इस देश में जो कुछ चलता आ रहा है, वह हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों के अनुरूप नहीं है। हमने बिना अपनी बुद्धि लगाये, बिना अपने धर्मग्रन्थों को पढ़े, बिना जाने-समझे परम्परा के चलते अपने शास्त्र विद्या से शून्य धर्माचार्यों की हर बात को धर्म के रूप में स्वीकार कर लिया। ऐसी स्थिति में हमसे भी कहीं अधिक भ्रमित विदेशी लोग जब आक्रमणकारी के रूप में इस देश में आए तो हमने उनके माने हुए धर्म को भी धर्म के रूप में मान्यता दे दी।

भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म मानव-मस्तिष्क की उपज न होकर ईश्वर की ओर से दी गई वह जीवन-पद्धति है, जिसके अनुसार जीने से मनुष्य को लोक-परलोक दोनों में अक्षय सुख मिलता है। इस लोक में किये जाने वाले समस्त कर्मों का फल क्या मिलेगा? कैसे मिलेगा और कब मिलेगा? इसका पूरा-पूरा ज्ञान मनुष्य को कभी नहीं हो सकता, इसलिए धर्म मानव के मस्तिष्क की उपज हो ही नहीं सकता। धर्म का ज्ञान तो परमात्मा ने वेद के माध्यम से सृष्टि के प्रारम्भ में ही दे दिया था। इसीलिए तो महर्षि मनु- **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** तथा **'वेद प्रतिपादितो धर्मः अधर्मस्तद्विपर्ययः'** की घोषणा कर रहे हैं। हाँ मनुष्य का स्वभाव कठिनता से सरलता की ओर आकर्षित रहने वाला है। इसलिए वह तप-त्याग व परोपकार जेसे धर्म तत्त्वों की अपेक्षा सरलता, सहजता व कम श्रम से अधिक प्राप्ति वाले उपाय खोजता रहता है। इन्हीं उपायों के पीछे चलते हुए मनुष्य को पता ही नहीं चलता कि वह कब धर्म से अधर्म, सत्य से असत्य और पुण्य से पाप की ओर चल निकला। ऐसा करते-करते जब समाज में अधर्म, अन्याय, अन्धविश्वास और अत्याचार जैसी अनर्थकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं तो कुछ विचारशील सज्जन उन अनर्थकारी प्रवृत्तियों से प्रताड़ित लोगों की पीड़ा से व्याकुल होकर समाज सुधार का पुण्य प्रयास करते हैं। कुछ समझदार लोग उनका समर्थन सहयोग करने लगते हैं तो वही प्रयास समाज सुधार अभियान बन जाता है। जिस देश, समाज में जैसी सामाजिक बुराइयाँ, कुप्रथाएँ, धर्माडम्बर, अन्धविश्वास होते हैं, वे महापुरुष अपनी विद्या-विवेक व सामर्थ्यानुसार वैसा ही सुधार आन्दोलन चलाते हैं। उनके शरीर त्याग के बाद उनके सहयोगी-समर्थक उनके सुधार सम्बन्धी विचारों को अपनी बुद्धि व परिस्थितियों के अनुसार संग्रह करके पुस्तक रूप में छपा देते हैं। सुधार कार्य से प्रेरित-प्रभावित पुरुष उस समाज सुधारक के प्रति अतिशय श्रद्धा रखने के कारण तथा उनके स्थान पर स्वयं को महिमा मण्डित कराने की भावना से उन संग्रहीत उपदेशों की पुस्तकों को धर्म ग्रन्थ बताकर जनमानस में उसके प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न करते हैं और बाद में यही ग्रन्थ धर्मग्रन्थ मान लिया जाता है और पाँच-दस शताब्दी बाद वह सुधारक ईश्वर या ईश्वर दूत बन जाता है तथा उसके अनुयाई अन्य लोगों से विशेष दिखने के लिए उस महापुरुष के नाम पर एक नये धर्म की घोषणा कर देते हैं। जैन, बौद्ध से लेकर यहूदी, ईसाई और मुसलमान ऐसे ही धर्म के रूप में विश्व पटल पर अपनी पहचान बना चुके हैं।

भारतीय ज्ञान-परम्परा इस प्रकार के समाज सुधार अभियानों को मानवता के लिए हितकर तो मानती है, मगर इन्हें धर्म के रूप में स्वीकार नहीं करती। भारत में समय पर ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने समाज सुधार के क्षेत्र में कार्य करते हुए मानवता की सेवा की है। महावीर, महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, नानकदेव, महात्मा ज्योति बा फुले से लेकर महर्षि दयानन्द सरस्वती

तक सबने समाज सुधार के बड़े-बड़े काम किये हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा में इन्हें सम्प्रदाय के नाम से स्वीकारा गया है, न कि धर्म नाम से। साहित्य में इन्हें मत, पन्थ व सम्प्रदाय जैसे नामों से तो पुकारा गया है, मगर धर्म के रूप में इन्हें कहीं नहीं स्वीकार किया गया। 'सम्यक् प्रदानेन इति सम्प्रदाय:' के अनुसार काल विशेष में व्यक्ति विशेष द्वारा भलीभाँति सर्वहित के लिए दिये गये विचारों, उपदेशों को भाषा की दृष्टि से सम्प्रदाय ही कहा जा सकता है, धर्म नहीं।

धर्म को धर्म बनाने के लिए आवश्यक है कि हम धर्म शब्द के अर्थ और धर्म के गुणों को भलीभाँति जान लें। धर्म शब्द संस्कृत भाषा का है तो यह संस्कृत से ही समझा जा सकता है। धर्म- ''धृ धारणे'' धातु से बनता है। जगत् और जीवन को धारण करने वाले नियम-सिद्धान्त ही धर्म कहे जाते हैं। हम पहले देख चुके हैं कि तर्क सिद्ध सत्य को धर्म माना गया है तथा धीरज, क्षमा, मनोनिग्रह, चोरी न करना, मन, कर्म वचन की पवित्रता, इन्द्रिय दमन, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना जैसे मानवीय गुणों को धर्म के दस लक्षण स्वीकार किया गया है। सत्य पर आधारित धैर्य आदि मानवीय गुणों से सुशोभित जीवन-पद्धति ही धर्म है। हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान आदि धर्म नहीं मत-पन्थ व सम्प्रदाय कहे जा सकते हैं। इनमें कुछ बातें सच्ची-अच्छी हो सकती हैं तथा कुछ इसके विपरीत भी। जैसे झूठ मिले सच का पूर्णत: स्वीकार नहीं किया जा सकता, वैसे ही मानवीय भूलों और तर्क विरुद्ध अन्धविश्वासों तथा असत्य-अन्याय को बढ़ावा देने वाली परम्पराओं से युक्त ईसाई-मुसलमान आदि मत-पन्थों को धर्म के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। धर्म-श्रद्धा व आस्था से पहले तर्क सिद्ध सत्य है। तर्कसिद्ध सत्य को ही श्रद्धापूर्वक स्वीकारना बुद्धिमानी है। आज 'आस्था' और 'श्रद्धा' ये दो शब्द ऐसे रूप में प्रचलित हैं कि जिनकी आड़ लेकर कुछ भी परोसा और पचाया जा रहा है। आस्था पूर्ण रूप से ठहरने का नाम है और श्रद्धा का अर्थ है- सत्य का ग्रहण करना। '**श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा**'- अर्थात् जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाए, वह श्रद्धा। मनुष्य के मन-बुद्धि आदि सत्य में ही ठहरते हैं, असत्य से पूर्ण सन्तोष किसे कब मिला है? इसीलिए सत्य को ही धर्म और धर्म को सत्य से उत्पन्न कहा गया है। धर्म को धर्म के रूप में स्वीकारना ही धर्म का धर्म बनाना है। असत्य को स्वीकारना अधर्म को स्वीकारना है। हम बुद्धि-विवेक से काम लें, सत्य को ही स्वीकार करें, सत्य ही धर्म है- '**नाऽन्य: पन्था विद्यतेऽयनाय।**'

मुक्त पुरुषों को 'युगपत्' ज्ञान होता है

जिसे 'धनञ्जय' वायु का ज्ञान हुआ है और जिसकी आत्मा उसमें सञ्चार कर सकती है और जिनके आत्मा से पूर्वजन्म संस्कार निकल चुके हैं वह और जिसके आत्मा में स्थायी शान्ति उत्पन्न हुई है, जिसके आत्मा को अत्यन्त पवित्रता, स्थिरता, ज्ञानोन्नति की पहचान हो चुकी है और जिसकी दृष्टि को और मनोवृत्ति को ज्ञान सुख के बिना अन्य सुख विदित नहीं है, ऐसे योगी को परमानन्द प्राप्त होता है। ऐसे मुक्त पुरुषों को देश, काल, वस्तु परिच्छेद का 'युगपत्' ज्ञान होता है, उन्हें 'युगपत्' ज्ञान का अटक नहीं है। जैसे एक कण शक्कर चींटी को मिले तो वह उसे ले जाना चाहती है; परन्तु उसे एक शक्कर का गोला मिल जाये तो उसी शक्कर के गोले को वहीं पर चाट लिपट जाती है; इसी तरह योगियों की आत्मा की स्थिति परमानन्द प्राप्त होने पर होती है।

- स्वामी दयानन्द सरस्वती (पूना प्रवचन)

ईश्वर

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

[पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय आर्यसमाज के नेता के साथ ही दार्शनिक चिन्तक भी थे। आपने लेख एवं ट्रैक्ट के माध्यम से विपुल साहित्य सृजन किया। प्रसिद्ध मंगलाप्रसाद पुरस्कार से आप सम्मानित हुए। आपकी रचनाओं में से कुछ लेख परोपकारी साभार प्रकाशित करने जा रहा है। पूर्व प्रकाशित होने पर भी ये आज भी प्रासंगिक हैं - सम्पादक]

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
(यजु. ४०/१)

इस जगती अर्थात् संसार में जितना जगत् अर्थात् प्रगति-समूह है यह सब एक अधिष्ठातृ-शक्ति द्वारा ओत-प्रोत है जिसको ईश या ईश्वर कहते हैं।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (ऋ. १०/१२१/३)

जो साँस लेनेवाले और पलक मारनेवाले (जीवधारियों) का अपनी महत्ता के बल से प्रकाशक या स्वामी है, जो दोपायों और चौपायों सभी को वश में रखता है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम समग्र सामग्री से उपासना करें।

दो प्रकार के पदार्थ - संसार में दो प्रकार के पदार्थ मिलते हैं- चेतन और जड़ या चर और अचर। जड़ या अचर वे हैं जो गतिशून्य हैं, जैसे कुर्सी, मेज आदि। चेतन या चर वे हैं जो गतिवान् या गति-प्रेरक हैं। चर या चेतन अपनी गति जड़ या अचर को उधार दे देते हैं। इससे जड़ पदार्थ भी गतिवान् या चर जैसे हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कलम जड़ है। वह स्वयं नहीं चल सकती, परन्तु जब मेरे हाथ में आती है तो मेरी गति को प्राप्त करके स्वयं चलने लगती है। उधार ली हुई वस्तु अपनी नहीं होती। कलम तभी तक चलती है जब तक मैं उसमें गति का संचार करता रहता हूँ। मैंने कलम को गति दी, यही नहीं इस पृष्ठ पर मैंने जो कुछ लिखा है वह वस्तुतः कलम का लिखा हुआ है। शब्द, वाक्य, उनमें ओत-प्रोत ज्ञान, यह सभी कलम से आविर्भूत हुआ है। अब यदि कोई कलम से पूछे कि क्या तुझे हिन्दी भाषा आती है? क्या तू अंग्रेजी आदि अन्य भाषाएँ भी जानती है? कलम क्या उत्तर देगी? कुछ भी नहीं। क्यों? इसलिए कि कलम ज्ञानशून्य, गतिशून्य, अचेतन जड़ वस्तु है। वह यह भी नहीं समझती कि उससे कोई कुछ पूछ रहा है, परन्तु जो कलम मेरे हाथ में हिन्दी लिख रही है वही किसी रूसी विद्वान् के हाथ में रूसी भाषा लिख सकती है। जो मेरे हाथ में ईश्वर-विषय का प्रतिपादन कर रही है वह किसी गणितज्ञ के हाथ में गणित के कठिन से कठिन प्रश्नों का समाधान करती है। कलम सब भाषाओं की और सब प्रकार की विद्याओं की प्रकाशिका है।

यह सब चेतन का खेल - परन्तु यह सब उस चेतन की चेतना का खेल है जो भाषा और भावों का कोष है। वह चेतन शक्ति क्या है? आप उसे देख नहीं सकते। न वह काली है, न मोटी, न लम्बी न चौड़ी। फिर भी है। एक चीज है। उस चीज के क्या गुण हैं? क्या लक्षण हैं? हम उसको कैसे पहचान सकते हैं? वह आँखों से दिखाई नहीं देती, कान से सुनाई नहीं देती, नाक से सूची नहीं जा सकती, त्वचा से छूई नहीं जा सकती, जीभ से चखी नहीं जा सकती। फिर भी है। हमको वह प्रतीत होती है। हम उससे इनकार नहीं कर सकते। क्यों? वह स्वयंसिद्ध है। आप सब चीजों से इनकार कर सकते हैं, परन्तु अपने अस्तित्व से तो इनकार करना असम्भव है। कौन कहेगा कि 'मैं नहीं हूँ?' कपिल मुनि ने सांख्यदर्शन में इसीलिए कहा था-

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात्।
षष्ठी व्यपदेशादपि। (सां. द. ६/१/२)

अर्थात् चेतन सत्ता विचित्र है। यह देह से अलग है, परन्तु देह के प्रत्येक अंग को चेतन कर देती है। आँख को देखनेवाला और कान को सुननेवाला बना देना इसी का काम है। यह न आँख है न कान, परन्तु आँख को प्रेरित करके आँख हो जाती है और कान को प्रेरित करके कान। मैं देखता हूँ, यह मेरी आँख है। मैं सुनता हूँ, यह मेरा कान है।

मेरे आँख है, परन्तु मैंने आपको नहीं देखा। मेरा ध्यान दूसरी ओर था। मेरे कान हैं परन्तु मैंने आपकी बात नहीं सुनी। मेरा मन दूसरी बात में लगा था। इस प्रकार के वाक्य आप नित्यप्रति कहते रहते हैं। ये वाक्य सार्थक हैं, निरर्थक नहीं। क्यों? इसलिए कि आप वह विचित्र सत्ता हैं। आप अनुभव करते हैं कि मैं हूँ और मेरा दूसरी चीजों से सम्बन्ध है, अर्थात् आप चेतन हैं और आप जड़ चीजों को गति की प्रेरणा भी कर सकते हैं। यही भेद है चेतन और जड़ का। जितना आप अपनी प्रगतियों का विचार करेंगे, उतना ही आपको अपनी सत्ता का अनुभव होगा।

जड़ पदार्थ चेतन सत्ता का पता देते हैं - इससे आप पर एक बात मुख्यतया विदित हो जाती है। वह यह कि अपनी इन्द्रियों से संसार की सभी चीजों का ज्ञान नहीं होता। कुछ चीजें अगोचर भी हैं- अदृष्ट और अदृष्टव्य, अश्रुत और अश्रोतव्य। फिर भी हैं, आप इनसे इनकार नहीं कर सकते। इन सत्ताओं को आप कैसे जानते हैं? कुछ का ज्ञान आपको स्वयं हो जाता है, जैसे आप अपनी सत्ता का नित्य अनुभव करते हैं। और यदि कोई आपसे कहे कि 'आप नहीं हैं' तो आप इसको मानेंगे नहीं। कुछ का ज्ञान आपको उन जड़ वस्तुओं के द्वारा होता है जिनमें उन चेतन सत्ताओं की गति ऋण-रूप उपस्थित है, जैसे जब तक मैं साँस लेता हूँ, पलक मारता हूँ या शरीर के किसी अंग को हिलाता हूँ, आप मेरे अस्तित्व को मानते हैं। साँस बन्द हो जाय, नाड़ी गतिशून्य हो, हृदय की धड़कन बन्द हो, पलक न उठें तो आप कहेंगे 'यह मनुष्य मर गया' अर्थात् मुख्य 'चेतन सत्ता' यहाँ से चली गई। अब यह शरीर नहीं अपितु शव है।

जिस प्रकार जड़ नाक-कान चेतन-प्रेरित गति को प्रकट करते हुए अपने प्रेरक की सत्ता का प्रतिपादन करते हैं, इसी प्रकार जगत् की अन्यान्य जड़ वस्तुएँ अपनी गति के किसी अन्य प्रेरक की ओर संकेत करती हैं।

सारा जहान तेरा निशान -

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्। (यजु. ८/४१)

संसार की वस्तुएँ सब पदार्थों का ज्ञान रखनेवाले सूर्य के लिए केतु अर्थात् झंडियों का काम करती हैं, अर्थात् इन सब वस्तुओं से उस महान् ईश्वर की सत्ता का पता लगता है जिसके जानने से हम समस्त संसार का यथोचित ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इस वेद-मन्त्र में दो मुख्य बातें बताई हैं। विश्व ईश्वर का पता देता है और ईश्वर के ज्ञान से विश्व का परिज्ञान होता है। अन्योन्याश्रय भाव है। अन्योन्याश्रय दोष नहीं। जिन वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध होता है उनमें से प्रत्येक दूसरे का परिज्ञान प्राप्त कराती है। घड़ी से घड़ीसाज का पता चलता है और घड़ीसाज को समझकर हम घड़ी का परिज्ञान उपलब्ध करते हैं। आँख बताती है कि आँख से देखनेवाला कोई आत्मा है। उसने आत्मा का पता दिया। जब आत्मा को समझ लिया तो आँख का प्रयोजन समझ में आ गया, क्योंकि आँख है आत्मा के ही किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए। कहीं पर रखी हुई मोटरकार को देखकर आप पूछने लगते हैं कि यह किसकी मोटर है? परन्तु मोटर की पूरी उपयोगिता तो मोटर के स्वामी की प्रवृत्ति को समझकर ही ज्ञात होती है। यदि मोटर का स्वामी व्यापारी है तो मोटर व्यापार के भी उपयुक्त है। यदि वह कृषक है तो कृषक के उपयोगी भी है।

इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, समुद्र, नदी सभी वस्तुएँ जड़ होते हुए भी चेतन-सदृश काम करती हैं। उनमें गति है, परन्तु अपनी नहीं, किसी अन्य प्रेरक की। वैदिक भाषा में प्रेरक के लिए सबसे अच्छा शब्द

'सविता' है, क्योंकि वह समस्त जगत् को गति देता है।

यहाँ प्राय: यह प्रश्न होता है कि जो ईश्वर आँख से दिखाई नहीं देता उस पर कैसे विश्वास किया जाय? इस विषय में ऋग्वेद का एक मन्त्र है-

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्। सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः।। (ऋ. २/१२/५)

प्रश्न : यं स्मा पृच्छन्ति- लोग पूछते हैं।

कुह सेति घोरम्- वह डरानेवाला कहाँ है? क्यों व्यर्थ ही ईश्वर-ईश्वर कहकर हमको डरा रहे हो?

उतेमाहुः नैषो अस्तीति एनम्- उसके विषय में तो यही कहा जा सकता है कि वह कहीं नहीं। होता तो दिखाई न देता?

उत्तर : ऐसा मत कहो।

सः विज इव अर्यः पुष्टीः अमिनाति- वह विरोधी शक्तियों को विवेकवान् के समान नष्ट कर देता है। ईश्वर वह शक्ति है जिसके आगे किसी की नहीं चलती। आप प्रकृति के नियमों को कितना ही वश में करें, कहीं-न-कहीं से कोई ऐसी बात हो जाएगी कि आपका मार्ग रुक जाएगा। अंग्रेजी में कहते हैं Man proposes and God disposes (मैन प्रोपोज़ेज़ एण्ड गॉड डिस्पोजेज़) - मनुष्य योजना बनाता है और ईश्वर उसको तितर-बितर कर देता है। मनुष्य की कितनी योजनाएँ विफल हो जाती हैं। यदि संसार केवल जड़ होता तो यहाँ न कोई नियम होता न ही नियामक। उसके नियमों की शक्ति का पता तो मनुष्य को तभी चलता है जब उसकी गति रुक जाती है। इसलिए वेद कहता है-

श्रत् अस्मै धत्त- उस पर श्रद्धा करो।

हे जनासः - हे लोगो!

स इन्द्रः- वही ईश्वर है।

प्रश्न : इसी प्रकार का प्रश्न एक और मन्त्र में किया गया है-

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति। नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम।। (ऋ. ८/१००/३)

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय- हे प्रयत्नशील लोगो, तुम इन्द्र की स्तुति करो। ऐसा गुरुजनों का उपदेश है।

सत्यं यदि सत्यमस्ति- हम मानने को तैयार हैं यदि यह सत्य हो।

नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह- कुछ लोगों का कहना है कि इन्द्र तो कोई है ही नहीं।

क ईं ददर्श- उसको किसने देखा है?

कं अभि ष्टवाम- (कमभि ष्टवाम) - फिर हम स्तुति किसकी करें?

उत्तरः यह तो 'नेम' अर्थात् अधूरी बुद्धिवालों का कहना है, जो केवल स्थूलदर्शी हैं और पूरे विवेक से काम नहीं लेते।

(नोट-**त्वो नेम इत्यर्धस्य**-निरुक्त ३, २०)

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना। ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि।। (ऋ. ८/१००/४)

ईश्वर कहता है-

जरितः- हे स्तुति करनेवाले, क्यों सन्देह करता है?

अयमस्मि- मैं तो यह रहा! तेरे ही पास!

पश्य मा इह- मुझे तू अपने निकट ही देख।

विश्वा जातानि अभि अस्मि महा- अपने महत्त्व के बल से मैं सब संसार पर आधिपत्य रखता हूँ।

ऋतस्य प्रदिशः- ऋतु अर्थात् कानूने-कुदरत (सृष्टि-नियम) के जाननेवाले विद्वान् लोग।

मा वर्धयन्ति- मुझको बढ़ाते हैं अर्थात् मेरे यश का प्रचार करते हैं।

आदर्दिरः- संहार करने की शक्ति रखनेवाला मैं।

भुवना- सब भुवनों अर्थात् जगत् का।

दर्दरीमि- संहार कर देता हूँ।

अर्थात्-ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता भी है, पालक भी है और संहार भी वही करता है।

प्रश्न- हम तो सुना करते थे कि ब्रह्मा सृष्टि को

बनाता है, विष्णु पालन करता है और शिव संहारक है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन देव सृष्टि के रचयिता, पालक तथा संहारकर्ता हैं।

उत्तर- इन तीनों देवों की कल्पना पुराण लिखनेवाले लोगों की अपनी झूठी कल्पना है। वस्तुत: उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाला एक ही देव या ईश्वर है। उसको ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि आदि अनेक नामों से पुकारा गया है। ईश्वर अनेक नहीं, उसके नाम अनेक हैं। देखो ऋग्वेद में कहा गया है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋ. १/१६४/४५)

उसको लोग इन्द्र, वरुण, अग्नि नामों से पुकारते हैं। वह दिव्य है, सुपर्ण है और गरुत्मान् है। वह एक है। विद्वान् उसको अनेक नामों से कहते हैं। यहाँ स्पष्ट लिखा है-

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

- वह एक सत्ता है। उसे विद्वान् लोग बहुधा (बहुत नामों से) पुकारते हैं।

ईश्वर के अनेक गुण हैं। प्रत्येक गुण के लिए अलग-अलग नाम हैं। इसलिए ईश्वर के अनेक नाम होना स्वाभाविक है। इस मंत्र में ईश्वर के जो नाम दिये हैं उनके अर्थ यह हैं-

इन्द्र- ऐश्वर्य वाला।

मित्र- (मित्रं प्रमीतेर्मरणात् त्रातारम् - सायणभाष्य) मृत्यु से बचानेवाला।

वरुण- वरण करने या ग्रहण करने योग्य।

अग्नि- पूजनीय।

दिव्य- ज्योतिः स्वरूप।

सुपर्ण- (शोभनानि पर्णानि पालनानि यस्य सः) जो भली-भाँति जगत् का पालन करता है वह।

गरुत्मान्- (गुर्वात्मा- यास्क) परम आत्मा।

यम- नियन्ता।

मातरिश्वा- अन्तरिक्ष में व्यापक।

इसी प्रकार जिन तीन नामों से तुमने तीन देवों या ईश्वरों की अलग कल्पना की है अर्थात् ब्रह्मा अलग, विष्णु अलग और महेश अलग, यह तुम्हारी कल्पना वेदविरुद्ध और भ्रममूलक है। इसने व्यर्थ ही अड़ंगा लगाकर हिन्दुओं को दो भागों अर्थात् वैष्णवों और शैवों में विभक्त करके आपस में लड़ा मारा। देखो 'शिव' का अर्थ तो संहार करनेवाला है नहीं। 'शिव' का अर्थ है कल्याण करनेवाला। ऐसे ही 'महेश' या 'महादेव' का अर्थ है बड़ा ईश्वर, संहारकर्त्ता नहीं। 'विष्णु' का अर्थ है व्यापक। ब्रह्म या ब्रह्मा का अर्थ है बड़ा।

प्रश्न- जब ईश्वर 'आदर्दिर:' अर्थात् संहारकर्ता है तो मित्र कैसा? ऐसे ईश्वर से तो दूर ही रहना चाहिए। ईश्वर हमको ऐसे गुण बताकर क्यों डराता है?

उत्तर- आप संहार का अर्थ ही नहीं समझे। जो चीज बनती है वह बिगड़ती भी है। यदि बिगड़े नहीं तो नई कैसे बने? वृक्ष को चीरा न जाय तो मेज़-कुर्सी कैसे बने? कपास को काता न जाय तो कपड़ा कैसे बने? समुद्र का पानी भाप न बने तो बादल कहाँ से आवे? पहाड़ कटे नहीं तो नदी कैसे बने? यदि मनुष्य न मरे तो नया जन्म कैसे हो? इस प्रकार रचना, पालन और संहार एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। ईश्वर अपने को 'आदर्दिर:' कहकर आपको डराता नहीं, अपितु सचेत करता है कि कहीं आप अपने को सदा रहनेवाला समझकर अभिमानी और अत्याचारी न हो जाएँ।

प्रश्न- हम कैसे जानें कि ईश्वर है या नहीं अथवा कैसा है कैसा नहीं? सृष्टि के देखने से तो ईश्वर का पता नहीं चलता। ईश्वर हमें दिखाई नहीं देता। पुस्तकों में ईश्वर के विषय में बहुत कुछ लिखा है, पर उन पर कैसे विश्वास करें?

उत्तर- आप अपनी इंद्रियों, अपने ज्ञान और सृष्टि पर तो विश्वास करेंगे? यदि आपको इन पर भी विश्वास नहीं है तो आपकी अवस्था अवश्य ही शोचनीय और दयनीय है। परन्तु आपको यदि अपने ज्ञान के साधनों पर विश्वास है जो सर्वथा नैसर्गिक हैं तो आपको ईश्वर के

अस्तित्व पर भी विश्वास करना ही पड़ेगा।

हम ऊपर दिखा चुके हैं कि सभी चीजें इन्द्रियगोचर नहीं हैं और न सभी चीजों को सभी इंद्रियों से जान सकते हैं। आँख रूप बताती है, शब्द नहीं। कान शब्द का परिचय कराता है, स्वाद का नहीं। नाक से आप यह जान सकते हैं कि अमुक वस्तु में सुगन्ध है या नहीं। पाँचों इंद्रियों से सुख-दुःख का भान नहीं होता। इसके लिए मन चाहिए। सुख-दुःख को आप देख नहीं सकते, फिर भी आप सुख-दुःख के होने से इनकार नहीं कर सकते। जो चीज प्रत्यक्ष होती है वह थोड़ी देर के पश्चात् ही परोक्ष हो जाती है। फिर क्या उसके अस्तित्व से भी इनकार किया जा सकता है? इसलिए यह कहना तो सर्वथा असंगत और अयुक्त है कि जो वस्तु दिखाई न पड़े वह है ही नहीं।

प्रश्न- तो क्या जो वस्तु दिखाई न पड़े उसे मान ही लें? इस प्रकार तो हमको आकाश के फल और खरगोश के सींगों पर भी विश्वास करना पड़ेगा?

उत्तर- हम यह नहीं कहते कि जो चीज दिखाई न पड़े उसे मान ही लो। हमारा तो केवल यह कहना है कि किसी सत्ता का आँख से दिखाई न देना उसके नास्तित्व का हेतु नहीं है। हम बहुत-सी वस्तुओं को बुद्धि से जान सकते हैं। हमारे पास सैकड़ों ऐसी वस्तुएँ रहती हैं जिनके बनानेवालों को हमने कभी नहीं देखा और न देख सकेंगे, फिर भी हम मानते हैं कि इन वस्तुओं का बनानेवाला कोई है।

प्रश्न- हम उन वस्तुओं के बनानेवाले का अनुमान करते हैं जिनके लिए निश्चय है कि वे स्वयं नहीं बन सकीं।

उत्तर- ठीक! क्या आप ऐसी वस्तुएँ बता सकते हैं जो स्वयं बन जाएँ?

प्रश्न- हाँ! जैसे जल ऑक्सीजन और हॉइड्रोजन के स्वभावतः मिलने से बन जाता है।

उत्तर- जल में जल का स्वभाव है या ऑक्सीजन और हॉइड्रोजन का?

प्रश्न- जल का।

उत्तर- जल का स्वभाव जल बनने से पहले था या नहीं?

प्रश्न- किसी चीज का स्वभाव उसके अस्तित्व में आने से पहले नहीं हो सकता।

उत्तर- ठीक! इसलिए जब तक जल बनने नहीं पाया था तब तक उसका स्वभाव भी न था। फिर जल अपने स्वभाव से नहीं बना।

प्रश्न- ऑक्सीजन और हॉइड्रोजन तो थे। उन्हीं से स्वाभाविक नियम के अनुसार जल बन गया।

उत्तर- आप अपने कथन का अर्थ तो सोचिए। जल जल के स्वभाव (अपने निज भाव) से नहीं बना। जब जल न था तो जलत्व भी न था। वह दूसरी वस्तुओं के 'स्वभाव' से बना अर्थात् 'परभाव' से। फिर यह कहना ठीक नहीं कि वस्तुएँ अपने स्वभाव से बनती हैं। ऑक्सीजन में ऑक्सीजन का स्वभाव था, जल का नहीं। हॉइड्रोजन में हॉइड्रोजन का स्वभाव था, जल का नहीं। फिर जल किसके स्वभाव से बना?

प्रश्न- कुदरत के नियम से।

उत्तर- कुदरत नियम के अतिरिक्त कोई वस्तु है अथवा नियम का नाम ही कुदरत है?

प्रश्न- यदि हम नियम और कुदरत को एक ही मान लें तो क्या हानि?

उत्तर- तो कुदरत और नियम कोई चेतन वस्तु माननी पड़ेगी जो ऑक्सीजन और हॉइड्रोजन को वश में रख सके और नियत समय में नियत मात्रा में उनको मिला और अलग कर सके।

प्रश्न- इसमें हमारी क्या हानि?

उत्तर- हानि कुछ नहीं। केवल इतनी बात है कि इसी को ईश्वर कहेंगे और आपको अपना अनीश्वरवाद छोड़ना पड़ेगा।

प्रश्न- हम कुदरत को चेतन मानते हैं। ईश्वर नहीं

मानते।

उत्तर- यह तो 'नाम' मात्र भेद रहा। चेतन सत्ता तो सिद्ध हो गई। इसी प्रकार आप अपने शरीर के समस्त संगठन पर विचार कीजिए। आपके शरीर का प्रत्येक अवयव ईश्वर के अस्तित्व की साक्षी है।

प्रश्न- कैसे?

उत्तर- अपनी आँखों को लीजिए।

(१) आँखें एक बनी हुई वस्तु हैं। एक समय था जब आपका शरीर ऐसी अवस्था में था जब यह एक अव्यक्त जल-सदृश द्रव वस्तु था। इसमें आँखें नहीं बन पाई थीं।

(२) आँखों को आपने नहीं बनाया। आप अब भी आँखों के निर्माण या संस्करण के विषय में कुछ नहीं जानते।

(३) आँख स्वयं अपना कर्त्ता नहीं है। कर्त्ता कार्य से पहले विद्यमान होना चाहिए। जो चीज पहले हो ही न, उसको आप किसी चीज का बनानेवाला कैसे कह सकते हैं?

(४) आँख की आकृति और उसकी उपयोगिता से अपूर्व, अद्‌भुत और प्रचुर ज्ञान का प्रदर्शन होता है। किसी आँख के डॉक्टर से पूछो, वह बताएगा कि 'आँख' के समझने के लिए भी कई विद्याओं के जानने की आवश्यकता है। बनाने के लिए तो और भी अधिक!

(५) आँख के कार्य और सूर्य के कार्यों में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि जो आँख को बनाता और उसका नियन्त्रण करता है, उसी ने सूर्य को बनाया है और वही उस पर नियन्त्रण करता है, अर्थात् जिस सृष्टिरूपी मशीन का एक पुर्जा सूर्य है उसीका एक छोटा-सा पुर्जा आँख भी है।

(६) आँखें बहुत-सी हैं और वे एक-समान काम करती हैं। अतः उनका निर्माण आकस्मिक नहीं हो सकता।

इससे स्पष्ट है कि जिसने आँख बनाई वह सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सर्वव्यापक, चैतन्य है। वह दयालु भी है, क्योंकि हम पर दया करके उसने आँखें दीं। इससे ईश्वर के इतने गुणों का पता चल गया-ज्ञान, व्यापकता, शक्तिमत्ता, दयालुता।

प्रश्न- आँख को देखकर ईश्वर के किस ज्ञान का पता चलता है? और कैसे?

उत्तर- कुर्सी को देखकर आप कुर्सी बनानेवाले के किस ज्ञान का पता चलाते हैं?

प्रश्न- कुर्सी का बनानेवाला इतनी बातें अवश्य जानता होगा-किस-किस प्रकार की लकड़ी से कुर्सी बनती है? लकड़ी को कैसे चीरा जाता है? उस चिरी हुई लकड़ी को किस प्रकार जोड़ते हैं? किस प्रकार जुड़ने से वह मनुष्य के अधिक उपयोगी हो सकती है?

उत्तर- ठीक! इसी प्रकार आँख का बनानेवाला रसायन शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, प्रकाश-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, वर्ण-शास्त्र, मनुष्य के मनोविज्ञान का पूर्णज्ञ होगा और जानता होगा कि आँख बनाने की रीति, उसकी सामग्री, प्रयोजनवत्ता क्या है! आपने चश्मा (उपनेत्र) बनानेवाले पुरुषों को देखा है। उनको किस-किस सायंस (विद्या) का परिज्ञान है-यह आप जानते हैं। चश्मा का निर्माण तो आँख देखकर ही किया गया है। चश्मा एक प्रकार से आँख का सहायक है। यदि चश्मा बनाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है तो मूल आँख का बनानेवाला कितना बड़ा ज्ञानी होगा- यह सोचने का यत्न कीजिए।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे।। (ऋ. १/३१/२)

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप समस्त ज्ञानियों से भी बड़े ज्ञानी हैं। आप देव अर्थात् समस्त विद्यावान् लोगों के व्रतों को अलंकृत करते हैं। आप विभु अर्थात् सर्वव्यापक हैं। आप समस्त सृष्टि का ज्ञान धारण करनेवाले हैं। आप द्यौलोक और पृथिवीलोक के निर्माता हैं। आप मनुष्यों के लिए विविध प्रकार की विभूतियों का

निर्माण करते हैं जो हमारी समझ से भी बाहर है।

ईश्वर सृष्टि को कैसे बनाता है- इस बात का प्रतिपादक ऋग्वेद के १०वें मण्डल का ८२वाँ सूक्त है। इसमें ईश्वर को विश्वकर्मा अर्थात् जगत् का निर्माता बताया है। इस सूक्त में ईश्वर के गुणों का वर्णन सुन्दर रूप से किया गया है-

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्वे आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम्।। (ऋ. १०/८२/१)

चक्षुषः। पिता मनसा । हि। धीरः घृतम्। एने। अजनत्। नम्नमाने। यदा। इत्। अन्ताः। अददृहन्ता। पूर्वे। आत्। इत्। द्यावापृथिवी। अप्रथेताम्।

इन्द्रियों के पालक और मनवाले परमात्मा ने इधर-उधर बहनेवाले अर्थात् अनिश्चित आकृतिवाले जल को उत्पन्न किया। फिर चीजों की आगे-पीछे की सीमाएँ नियत हुईं और द्यौ और पृथिवी अपने-अपने स्वरूप में आविर्भूत हुए।

भाव यह है कि जैसे अण्डे में पहले तरल पदार्थ होता है, फिर उसी में पक्षी के शरीर की सीमाएँ निश्चित होकर शरीरावयव व्यक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार विश्वकर्मा ने पहले तरल पदार्थ उत्पन्न करके फिर समस्त पदार्थों की सीमाएँ व्यक्त कर दीं और द्यौलोक और पृथिवीलोक बन गए-

विश्वकर्मा विमना आद् विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः।। (ऋ. १०/८२/२)

विश्वकर्मा। विमना। आद्। विहाया। धाता। विधाता। परम। उत। संदृक्। तेषां । इष्टानि। सम्। इषा। मदन्ति । यन्त्र। आ। सप्त ऋषीन्। परः। एकम् । आहुः।

वह परमात्मा विश्वकर्मा अर्थात् संसार को बनानेवाला, विमना अर्थात् विशेष ज्ञानवाला, विविध प्रकार के सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फलों का दाता, धाता, विधाता और सबको देखनेवाला है। सप्तऋषिरूपी इन्द्रियाँ उसी एक प्रभु से प्रेरणा लेती हैं और परमात्मा के दिये हुए इषा (अन्न) या पुष्टिदायक सामग्री से ही इनकी पुष्टि होती हैं।

अर्थात् ईश्वर अनन्त ज्ञानवान् और सबका द्रष्टा है। उसी एक ईश्वर से इन्द्रियों को प्रेरणा मिलती है और वही इनको अनेक प्रकार की सामग्री से पुष्ट करता है।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।।
(ऋ. १०/८२/३)

यः। नः। पिता। जनिता। यः। विधाता। धामानि। वेद। भुवनानि। विश्वा। यः। देवानां। नामधा। एक। एव। तं। संप्रश्नं। भुवना। यन्ति। अन्या।

जो हमारा पालक, उत्पादक और विधाता है, जो सब भुवनों और धामों को जानता है, जो अकेला देवों का नाम रखनेवाला है, उसीको अन्य भुवन पूछकर प्राप्त होते हैं।

अर्थात् ईश्वर ने सृष्टि बनाई। वही उसको पालता है। वही धारक है और उसी ने सब दिव्य पदार्थों के नाम रक्खे हैं, अर्थात् भाषा का आरम्भिक ज्ञान ईश्वर ने ही दिया है। जो उसकी खोज करते हैं, उनको वह प्राप्त होती है।

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि।।
(ऋ. १०/८२/४)

ते आ। अयजन्त। द्रविणं। सम। अस्मै। ऋषयः। पूर्वे। जरितारः। न। भूना। असूर्ते। सूर्ते। रजसि। निषत्ते। ये। भूतानि। सम्। अकृण्वन्। इमानि।

जिन पूर्व-ऋषियों ने स्थावर और जंगम वस्तुओं में से लेकर पहले-पहल इन पदार्थों को बनाया उन्होंने स्तोताओं के समान उस ईश्वर की स्तुति करके समस्त प्राप्त सामग्री से यज्ञ किया।

संस्था समाचार

आचार्य ज्ञानचन्द

प्रातः काल ७.३० से लगभग ८.३० तक यज्ञ तथा वेदपाठ में ऋग्वेद प्रारम्भ हुआ है। यजुर्वेद का वेद स्वाध्याय ब्र. आकाश तथा सायंकाल ६ से ६.५० तक यज्ञ व संध्या ब्र. वेदव्रत के द्वारा कराया जा रहा है। प्रातः यज्ञोपरान्त प्रवचन के क्रम में आचार्य कर्मवीर ने बताया कि योग क्या है? चित्त के ज्ञानात्मक व्यापार का निरोध होना। सत्व का लक्षण है ज्ञान या प्रकाश रजोगुण उभरा होता है तो यश, प्रतिष्ठा खूब चाहता है। विवाह शादी में झूठी प्रतिष्ठा के लिए कर्ज भी ले लेते हैं। जेब में नहीं अन्ना लोग कहें भगवन्ना। तमोगुण की अधिकता से लोभ आता है जो कि हर पाप का मूल है। धन का ही लोभ होता है ऐसा नहीं खाद्य पदार्थ का, समय आदि का भी लोभ होता है। अपनी मान्यता को बड़ा मानता है। धैर्य नहीं होता। शीघ्रता करता है। इसलिए बहुत हानियाँ भी हो जाती है। चित्त की इन स्थितियों को समझकर अपने को स्थिर करें।

मुनि सत्यजित् ने बताया कि प्रार्थना के लाभ में ऋषि दयानन्द ने सहायता का मिलना भी बताया है। परमात्मा की प्रार्थना से कर्मनिरपेक्ष विद्या, ज्ञान आदि के रूप में सहायता तो मिलती ही है। वह सभी मनुष्य के लिए समान ही होता है। सृष्टि के आदि में वेद ज्ञान देने में चार ऋषियों को माध्यम बनाया। ऐसे ही अभी भी पात्रता के अनुसार मनुष्यों को प्रेषित कर सकता है। ईश्वर हमारे शरीर, मन, बुद्धि में व्याप्त है। वह आन्तरिक प्रेरणा करता है। लोक में भी माता-पिता तथा अन्य लोगों से प्रार्थना करने पर वे सहयोग कर देते हैं। ईश्वर भी हमें कुछ इस प्रकार से सहयोग कर सकता है। परमात्मा कब कैसे सहायता कर देगा पता नहीं चलता। कुछ लोग कर्म के अनुसार ही मिलेगा इस अति में चले जाते हैं। वे ईश्वर से प्रार्थना के भाव से विरत हो जाते हैं तथा केवल प्रार्थना करने वाले भी अति में चले जाते हैं। कुछ लोग को अचानक किसी पदार्थ की आवश्यकता थी और सहायता मिल जाती है तो ऐसा सोचते हैं कि यह परमात्मा ने सहायता की। जबकि व्यक्ति स्वतन्त्र होता है। वह अपनी इच्छा से अपने पुरुषार्थ से अर्जित पदार्थ को किसी को देता है तो हमें उसे मनुष्य का धन्यवाद और कृतज्ञता ज्ञापित करनी चाहिए, ना कि परमात्मा की सहायता माननी चाहिए। यदि परमात्मा ही देता तो उस मनुष्य को पुण्य नहीं मिलेगा।

अतिथि होता के क्रम में अजमेर निवासी रोहित चतुर्वेदी का जन्म दिवस प्रातः यज्ञ करके व जन्मदिवस की आहुति देकर मनाया गया। इनके चाचा श्री विनोद ने प्रेरणा दी। दूसरे श्रीमती सुनीता गांधी का जन्म दिवस भी यज्ञ करके व जन्मदिवस की आहूति देकर मनाया गया? तीसरे कुमुदिनी पति श्रीमान् वासुदेव आर्य ने भी अपना जन्म दिवस यज्ञ कर व जन्मदिवस की आहूति कर मनाया। इन्होंने सभी आश्रमवासी व गुरुकुलवासियों के लिए दोपहर भोजन में खिचड़ा व लड्डू की खिलाया। सभी अतिथि होता को आचार्य कर्मवीर आदि के द्वारा आशीर्वाद दिया गया तथा इनके जीवन की मंगल कामनाएं की गई है।

ओम प्रकाश, रमेश, सुभाष व दिनेश नवाल परिवार की ओर से यजुर्वेद पारायण महायज्ञ २३ से २७ दिसम्बर तक सोल्लास संपन्न हुआ। यज्ञ ब्रह्मा परोपकारी सभा के संरक्षक व परोपकारी पत्रिका के संपादक डॉ. वेदपाल बीच-बीच में यजुर्वेद के मन्त्रों पर व्याख्यान भी करते रहे । वेदपाठ करने वाले ब्र. आकाश, ब्र. सुभाष, ब्र. कर्मनिष्ठ, ब्र. हरीश। वेद पाठ प्रातः ७.३० से लगभग १० तक पुनः सायं ४ से ६ तक हुआ। कार्यक्रम का परोपकारी सभा के यूट्यूब चैनल पर लाइव प्रसारण ब्र.

भानु प्रताप ने किया। जिसे आप बाद में भी देख सकते हैं। माता पुष्पलता, माता दीपा व श्रीमती स्नेह कंवर आदि ने यज्ञ की व्यवस्था में सहयोग प्रदान किया। श्रीमान् वासुदेव ने आवास व्यवस्था में सहयोग प्रदान किया । नवाल परिवार की ओर से सभा को कई लाख रुपए दान दिए व दिलवाएं गए।

प्रातः काल ६ से ६.४५ तक ध्यान, आसन व प्राणायाम आचार्य कर्मवीर के द्वारा करवाया गया। उत्तर प्रदेश से पधारे आचार्य कुलदीप के द्वारा प्रातः लगभग ११ से १.३० व रात्रि ८.३० से ९.३० तक राम कथा भजनों के माध्यम से किया गया जिसे सुनकर श्रोता मंत्र मुक्त हो गए। मुनि सत्यजित् व मुनि ऋतमा के द्वारा रात्रि ७.३० से ८.३० तक दाम्पत्य-संवाद किया गया जिसमें गृहस्थ में पति-पत्नी में कैसे सामंजस्य बनाकर रखें। इस पर व्याख्यान और शंका का समाधान किया गया।

श्री सुभाष नवाल परोपकारी सभा के कोषाध्यक्ष के इस पञ्च दिवसीय कार्यक्रम में परोपकारिणी सभा के सदस्य गण सभा प्रधान श्री सत्यानन्द, डॉ वेदपाल, ओम मुनि, मुनि सत्यजित्, श्री शत्रुघ्न, श्री सज्जन सिंह कोठारी, श्री जयसिंह गहलोत, श्रीमती ज्योत्सना धर्मवीर सम्मिलित हुए।

इसके साथ ही नवाल परिवार के पुत्र, पुत्रियाँ, पौत्र, पौत्रियाँ, सभी परिवार के लोग, इष्ट मित्र, पड़ौसी, सामाजिक संगठन के लोग, आर्यवीर दल के जिला संचालक विश्वास पारीक सभा के सहयोगी श्री वासुदेव आर्य, आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान के आचार्य व ब्रह्मचारी गण सभी आश्रमवासी कर्मचारी गण आदि अनेक लोग सम्मिलित हुए और इस कार्यक्रम का बहुत ही लाभ उठाया। आगे भी ऐसी कार्यक्रम करने की योजना है। इस कार्यक्रम में बहुत ही अच्छी यज्ञ, भोजन, आवास, मञ्च, बैठने आदि की व्यवस्था की गई थी। अंत में श्री सुभाष जी नवाल ने कार्यक्रम में सम्मिलित सभी परिवार के लोग, सहयोगी, कार्यकर्ता, कर्मचारी, आश्रमवासी, आचार्य, ब्रह्मचारी आदि का धन्यवाद ज्ञापित किया।

पृष्ठ संख्या ३४ का शेष भाग...

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद् भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि

२०.२७.५

वह परमेश्वर सौरमण्डल के शिरोभूषण-रूप सूर्य को बनाता है।

भूमि को उसके चारों ओर घुमाकर अपनी महिमा को बढ़ाता है।।

यतः वेदाविर्भाव का प्रयोजन प्राणी मात्र का कल्याण है। अतः वेद व्याख्या का यह व्यावहारिक पक्ष समीचीन ही कहना चाहिए। डॉ. विजयवीर विद्यालङ्कार ने सुदीर्घसाधना कर यह नवनीत पाठकवर्ग को उपलब्ध करा दिया है। इसके लिए वह वेदार्थ जिज्ञासुओं की बधाई के पात्र हैं। ग्रन्थ का उत्तम प्रकाशन इसके प्रकाशक-रामलाल कपूर ट्रस्ट की गरिमा के अनुरूप ही हुआ है। एतदर्थ ट्रस्ट भी बधाई का पात्र है।

-डॉ. वेदपाल

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय का पुनः आरम्भ २६ अगस्त को किया गया है। यह चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें।

- मन्त्री

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्य पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

आनन्द

जिस परमात्मा का यह 'ओ३म्' नाम है उसकी कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ ये हमारे शरीर, मन और आत्मा का विविध दु:ख जोकि अपने [से] दूसरे से होता है, नष्ट हो जावे और हम लोग प्राप्ति से एक-दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि से सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सब को आनन्द में रखें।

- संस्कार विधि

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। **आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।**

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। राशि जमा करने के पश्चात् दूरभाष द्वारा कार्यालय को अवश्य सूचित करें। दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

yono SBI | SBI Payments

MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI

SCAN & PAY

BHIM
SBI Pay
BHIM UPI

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

ग्रन्थ-समीक्षा

ग्रन्थ नाम - अथर्ववेद-काव्यामृत (तृतीय खण्ड, काण्ड १५-२०)

रचनाकार - डॉ. विजयवीर विद्यालङ्कार

प्रकाशक - रामलालकपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत (हरयाणा)

संस्करण - प्रथम, सितम्बर २०२३ ई.

पृष्ठ संख्या - ४८७

मूल्य - ५००/-

वेद मनीषी डॉ. विजयवीर विद्यालङ्कार की चिन्तनधारा का निदर्शन पाठक इससे पूर्व दो खण्डों में प्रकाशित अथर्ववेद काव्यमृत के रूप में कर चुके हैं। प्रस्तुत तृतीय खण्ड में अवशिष्ट पन्द्रह से बीस काण्ड की काव्य रूप में व्यावहारिक व्याख्या है।

डॉ. विद्यालङ्कार ने अपने काव्यानुवाद को 'व्यावहारिक व्याख्या' इस संज्ञा से संज्ञित किया है। पन्द्रहवाँ काण्ड व्रात्य काण्ड नाम से प्रसिद्ध है। व्रात्य के अर्थ को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। प्रकृत व्याख्या में "व्रती-सर्वहितकारी संन्यासी की व्रतचर्या" के रूप में स्वीकृत कर व्याख्यात किया गया है, जो व्यावहारिक व्याख्या को अन्वर्ह सिद्ध कर रहा है। तद्यथा-

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् १८.१.१

प्राणियों का हितकारी परमेश्वर प्रलयकाल में भी रहता है।

क्रियाशील होकर के वह निज प्रजापति स्वरूप प्रकट करता है।।

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनुर्व्यचलत् १८.२.१

वह व्रती सर्वहितकारी संन्यासी उठा, चलने को प्रवृत्त हुआ।

और पूर्व दिशा से चारों दिशाओं में चलने को संसिद्ध हुआ।।

तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देव अनुर्व्यचलन् १८.२.२

उस संन्यासी के साथ-साथ सामगान गायक भी चले।

आदित्य कोटि का विद्वान् और अन्यान्य विद्वान् भी चले।।

बृह ते च वैस रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति

१८.२.३

जो इन विद्वान् महात्माओं से निरर्थक वाद-विवाद करता है।

वह अपने को पूर्णतया उनके सत्सङ्गों से वञ्चित कर लेता है।।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः कईं ददर्शक इह प्र वोचत्।

बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन्

१८.१.७

इस संसार के प्रथम दिन के बारे में भला कौन जानता है?

इसको बनते हुए किसने देखा, इस विषय में कौन कह सकता है?

सबके स्नेही सर्वश्रेष्ठ परमात्मा की बड़ी भारी शक्ति है।

क्या हृदयेश्वरी प्रियतमा भी, इसके बारे में कुछ कह सकती है।।

बीसवें काण्ड में प्राय: अध्यात्मपरक व्याख्या द्रष्टव्य है-

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना। धृतस्नू बर्धिरासदे २०.२३.१

प्रकाश को प्राप्त हमारी इन्द्रियां भक्ति रस को उनकी ओर बहाती हैं।

सुखमय शरीर-रथों में प्रभु को हृदयासन पर बिठाती हैं।।

अथ वेदाङ्गप्रकाशः
तत्रत्यः सप्तमो भागः
अव्ययार्थः
श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः
मूल्य ₹ 40/-
ओ३म्
अथ वेदाङ्गप्रकाशः
तत्रत्यः षष्ठो भागः
स्त्रैणताद्धितः
वैदिक पुस्तकालय
मूल्य ₹ 120/-
ओ३म्
अथ वेदाङ्गप्रकाशः
तत्रत्य अष्टमो भागः
आख्यातिकः
पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः
श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत व्याख्यासहितः
प्रकाशकः
वैदिक पुस्तकालय
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर
(राजस्थान) - 305001
मूल्य ₹ 300/-
नवीन प्रकाशन
ओ३म्
संस्कार विधि
स्वामी दयानन्द सरस्वती
मूल्य ₹ 150/-
ओ३म्
श्रीमन्महर्षियास्काचार्यप्रणीतं
निरुक्तम्
(निघण्टुभाष्यम्)
वैदिक पुस्तकालय
मूल्य ₹ 150/-

आर जे/ए जे/80/2021-2023 तक प्रेषण : १५-१६ जनवरी २०२४ आर.एन.आई. ३९५९/५९

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

की

२०० वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला

१७-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,